वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656

9 772582 065005

विवेक ज्योति

वर्ष ६४ अंक ४ अप्रैल २०२६

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४

अंक ४

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

चैत्र, सम्वत् २०८३

अप्रैल, २०२६

अनुक्रमणिका

* विश्वास का परिणाम अद्‌भुत होता है : रामकृष्ण परमहंस देव १५०
* सदा विद्यमान मित्र, दार्शनिक और गुरु स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज (स्वामी गौतमानन्द) १५३
* स्वामी विवेकानन्द-स्तवराज: (कुशाग्र अनिकेत) १६२
* (बच्चों का आंगन) साँप! साँप! (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) १६४
* अतिथि और आतिथेय (राजकुमार गुप्ता) १६६
* (युवा प्रांगण) 'मनोजवं मारुततुल्यवेगम्' : युवा ऊर्जा का सन्तुलन (स्वामी गुणदानन्द) १७२
* श्रीराम का ब्रह्मत्व (भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') १७४
* सत्ता एक, भिन्न अभिधान (राजेश सरकार) १७८
* पुस्तक का हमारे जीवन में महत्त्व (श्रीमती मिताली सिंह) १८२
* सत्यमेव जयते (आनन्द कुमार) १८७
* (भजन एवं कविता) रामकृष्ण रट नाम (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी'), * रामकृष्ण प्रभु हृदय विराजो (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), * शरण रखना मुझे (भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') १७१
* त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) १७७
* परशुराम जय-जय (आनन्द कुमार 'पौराणिक') १८६
* पुस्तक समीक्षा १८८

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १४९
पुरखों की थाती १४९
सम्पादकीय १५१
रामगीता १५९
श्रीरामकृष्ण-गीता १७६
गीतातत्त्व-चिन्तन १८३
साधुओं के पावन प्रसंग १८९
समाचार और सूचनाएँ १९१

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

***विवेक-ज्योति* दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	२५०/-	१२५०/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में रजिस्टर्ड पार्सल का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ४५/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित मूर्ति अद्वैत आश्रम, वाराणसी में स्थित श्रीहनुमान जी की है।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्त्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६३ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्त्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री प्रदीप नारायण तिवारी, समता कॉलोनी, रायपुर (छ.ग.)	२,०००/-

अप्रैल माह के जयन्ती और त्यौहार

०२ महावीर जयन्ती
१३,२७ एकादशी

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

रामकृष्ण मठ

अरुणापुरम, पाला-686574, केरल

(रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा पश्चिम बंगाल की शाखा)

मोबाइल – 7381107644

शताब्दी समारोह (१९२६-२०२६)

रामकृष्ण मठ, अरुणापुरम्, पाला, वर्ष २०२६-२०२७ में अपनी समर्पित आध्यात्मिक, शैक्षिक एवं सेवा-गतिविधियों के गौरवमय सौ वर्षों की पूर्णता का सौभाग्य प्राप्त कर रहा है। १९२६ में पूज्य श्रीमत् स्वामी निर्मलानन्द जी (तुलसी महाराज) द्वारा स्थापित यह आश्रम, १९८७ से श्रीरामकृष्ण, श्रीसारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द के उदात्त आदर्शों को जीवन में साकार करते हुए निरन्तर मानव-सेवा एवं लोककल्याण के पथ पर अग्रसर हो रहा है। एक शताब्दी से यह मठ संस्कृत-शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, महिला सशक्तिकरण, योग, संगीत, राहत-कार्य एवं निरन्तर धार्मिक कार्यक्रमों के माध्यम से पाला और आसपास के लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला रहा है।

शताब्दी परियोजनाएँ – तत्काल अत्यावश्यकताएँ

१.	**शताब्दी स्मारक भवन (साधु निवास)** पूज्य अध्यक्ष/उपाध्यक्ष महाराज तथा वरिष्ठ साधुओं के आगमन के समय निवास हेतु भूतल पर एक आवासीय भवन का निर्माण अनुमानित व्यय :	**रु. १ करोड़**
२.	**मूल संरचना का विकास** पार्किंग सुविधा, भूमि-संरक्षण, सार्वजनिक शौचालय एवं आश्रम में सड़कों के निर्माण हेतु अनुमानित व्यय	**रु.१५ लाख**
३.	**संस्कृत कॉलेज के संरक्षण हेतु स्थायी कोष** संस्कृत शिक्षा की दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु लक्ष्य राशि :	**रु.५० लाख**
४.	**शताब्दी समारोह एवं सेवा गतिविधियों का विस्तार अनुमानित व्यय** :	**रु. १५ लाख**

निवेदन

शताब्दी के इस पावन अवसर पर, हम पुण्यपरक परियोजनाओं हेतु आपसे उदारतापूर्वक हार्दिक सहयोग का विनम्र निवेदन करते हैं। आपका योगदान चाहे छोटा हो या बड़ा, वह आध्यात्मिक विकास, शिक्षा और मानवता की सेवा के लिये एक स्थायी भेंट होगा, जो स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रवर्तित 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' (स्वयं की मुक्ति और संसार के कल्याण के लिए) आदर्श के अनुरूप है।

पावन त्रिमूर्ति आपको और आपके परिवार को शान्ति, समृद्धि और आध्यात्मिक परिपूर्णता प्रदान करें।

श्रीरामकृष्ण की सेवा में आपका,
स्वामी वित्संगानन्द
अध्यक्ष

Bank Details and QR Code for Donations (Indian Donors)
SB Account No: 23890110087965
UCO BANK, ARUNAPURAM, PALA
IFSC : UCBA0002389

Bank Details For Foreign Contrubutions:-
RAMAKRISHNA MATH ARUNAPURAM
Account No. 40198061446
(FCRA Saving Account)
IFSC : SBIN0000691
SWIFT : SBININBB104
SBI, New Delhi Main Branch

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

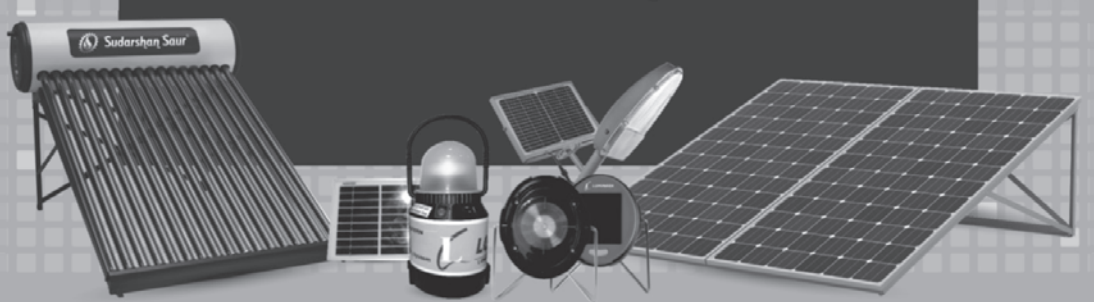

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ अप्रैल २०२६ अंक ४

स्वामी विवेकानन्द-स्तोत्रम्

स जयति जगति स्वामी वन्द्यो
वीर-विजेतृ-विवेकानन्दः।
मानुषमोहविवर्जितहृदयो
गुरुरिह पूर्णः सिद्धः सदयः।।
भुवेशी बहुसाधनसिद्धं वीरेश्वरसमुदितचिद्देहम्।
ईशंनिमन्त्रितभूतलजातं वन्दे वीरविवेकानन्दम्।।

– इस संसार में सर्वश्रेष्ठ वन्दनीय वीर विजेता स्वामी विवेकानन्द की जय हो! उनके हृदय में साधारण मनुष्यों के समान मोह नहीं था। वे गुरु रूप में पूर्ण सिद्ध और परम दयालु थे।

माता भुवनेश्वरी देवी की बहुत साधनाओं से तुष्ट वीरेश्वर महादेव मानो चैतन्यमय शरीर में विवेकानन्द रूप से आविर्भूत हुये हैं। जो ईश्वर के द्वारा आदेश प्राप्त होकर इस भूमण्डल में अवतीर्ण हुये हैं। उन्हीं वीर संन्यासी विवेकानन्द की मैं वन्दना करता हूँ।

पुरखों की थाती

हस्ती स्थूलतनुः स चाङ्कुशवशः
किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो।
वङ्कोणाभिहता पतन्ति गिरयः
किं शैलमात्रः पविः।।
दीपे प्रज्वलिते विनश्यति
तमः किं दीपमात्रं तमः।
तेजो यस्य विराजते स बलवान्
स्थूलेषु कः प्रत्ययः।।८९८।।

– हाथी का शरीर अति विशाल होता है, परन्तु वह एक छोटे-से अंकुश के वश में आ जाता है। पर्वत कितना विशाल होता है, परन्तु वह एक छोटे-से विद्युत् के आघात से टूट-फूट जाता है। अन्धकार अत्यन्त व्यापक होता है, परन्तु एक छोटा-सा दीप जलने से वह नष्ट हो जाता है। विशालता नहीं, अपितु तेजस्विता के कारण ही कोई बलवान होता है।

तेजोमयोऽपि पूज्योऽपि पापिना नीचधातुना।
अयसा संगतो वह्निः सहते घनताडनम्।।८९९।।

– अग्नि तेजस्वी और पूजनीय माना जाता है, तथापि लोहे रूपी नीच धातु का संग करने के कारण उसे भी हथौड़े का आघात सहना पड़ता है।

विश्वास का परिणाम अद्‌भुत होता है : रामकृष्ण परमहंस देव

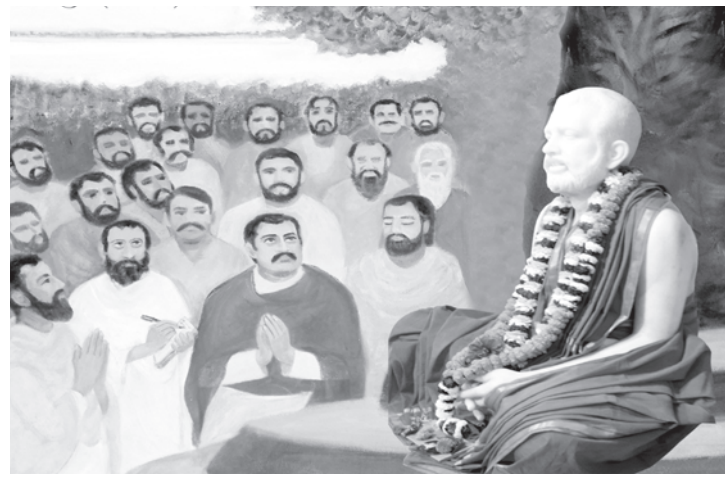

स्वयं रामचन्द्रजी को समुद्र पार करने के लिए सेतु बाँधना पड़ा, परन्तु हनुमानजी केवल 'जय राम' कहकर एक ही छलाँग में अनायास समुद्र लाँघ गए। विश्वास में कितनी सामर्थ्य है।

एक आदमी समुद्र पार करना चाहता था। एक साधु ने उसे एक ताबीज देकर कहा – ''इसके बल पर तुम समुद्र पार हो जाओगे।'' उस ताबीज को ले वह आदमी पानी पर से चलते हुए आगे बढ़ने लगा। बीचों बीच जाकर उसके मन में कुतूहल हुआ कि भला देखूँ तो इस ताबीज के भीतर ऐसी क्या चीज है जिसके बल पर समुद्र पार किया जा सकता है। उसने ताबीज को खोलकर देखा, उसमें एक कागज का टुकड़ा था जिस पर केवल 'राम' लिखा हुआ था। वह उपेक्षा के साथ बोला, 'बस, यही है? और कुछ नहीं?' जैसे ही यह संशय का भाव आया वैसे ही वह डूब गया। भगवान के नाम पर विश्वास हो तो असम्भव भी सम्भव हो सकता है। विश्वास ही जीवन है और अविश्वास ही मृत्यु।

एक शिष्य को गुरु पर इतना विश्वास था कि वह 'गुरु, गुरु' कहते हुए विश्वास के बल पर नदी पार हो गया। यह देखकर गुरु ने सोचा, 'तो सचमुच ही मुझमें इतनी शक्ति है! मुझे तो अब तक यह पता ही नहीं था।' दूसरे दिन गुरु 'मैं, मैं' कहते हुए नदी पार होने गए परन्तु पानी पर पैर रखते ही वे गिर पड़े और अपने को सम्हाल न पाकर डूब मरे! विश्वास का परिणाम अद्‌भुत होता है, परन्तु अहंकार से विनाश ही होता है।

किसी राजा के हाथ से ब्रह्म हत्या हो गई थी। इस पाप के प्रायश्चित का विधान पूछने के लिए वह एक ऋषि की कुटिया में गया। ऋषि उस समय स्नान के लिए गए हुए थे। उनका पुत्र कुटिया में था, उसने राजा की बात सुनकर कहा, 'तुम तीन बार रामनाम ले लो।' ऋषि ने कुटिया में लौटकर जब यह बात सुनी तो वे क्रुद्ध होकर बोले, ''जिस रामनाम का एक बार उच्चारण करने से कोटि जन्मों के पाप कट जाते हैं, तुमने राजा से वह रामनाम तीन बार लेने को कहा! तू चाण्डाल बन जा।'' यही ऋषि रामायण का गुहक चाण्डाल बना।

पत्थर हजारों साल तक पानी में पड़ा रहे तो भी उसके भीतर एक बूँद पानी नहीं घुसता, परन्तु मिट्टी के ढेले में पानी लगते ही वह घुल जाता है। जिसके हृदय में विशास का बल है वह हजारों बाधा-विघ्न की परीक्षा में से गुजरकर भी हताश नहीं होता, परन्तु अविश्वासी व्यक्ति छोटी-सी बात से ही विचलित हो जाता है।

विश्वास के बल पर रोग दूर करनेवाले वैद्य रोगी से कहते हैं – पूर्ण विश्वास के साथ कहो, 'मुझे कोई रोग नहीं है।' इस प्रकार कहते-कहते आत्मविश्वास जागृत होकर रोगी का रोग अच्छा हो जाता है। तुम यदि स्वयं को पापी, दुर्बल समझो तो शीघ्र ही तुम वैसे ही बन जाओगे। यदि तुम विश्वास रखो कि तुममें अनन्त शक्ति है, तो वास्तव में तुममें शक्ति आएगी।

जो सोचता है 'मैं जीव हूँ' वह जीव ही रह जाता है; जो सोचता है 'मैं शिव हूँ' वह शिव ही बन जाता है। मनुष्य जैसी भावना करता है वैसा ही बनता है।

जो जैसा चिन्तन करता है वह वैसा ही बन जाता है। भ्रमर का चिन्तन करते-करते झींगुर भी भ्रमर ही बन जाता है। इसी प्रकार सदा सच्चिदानन्द का चिन्तन करते रहने से मनुष्य सच्चिदानन्द स्वरूप ही हो जाता है। ○○○

सम्पादकीय

चित्ताकर्षक चित्रकूट में भगवान श्रीराम

भगवान श्रीराम के जीवन में चित्रकूट का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि उन्हें वन में यहीं रहने का मुनि द्वारा दिशा-निर्देश मिला था। पूज्य पिता श्री दशरथजी के सत्य वचन की रक्षा करने और माता कैकेयी की आज्ञा को शिरोधार्य कर भगवान श्रीराम अपने प्रिय अनुज श्रीलक्ष्मण और अपनी प्रिय भार्या श्रीसीताजी के साथ वनवास को प्रस्थान करते हैं। प्रयाग में उन्हें भारद्वाज ऋषि से भेंट हुई। ऋषि ने सर्वप्रथम फल आदि से उनकी सेवा-सुश्रूषा की। तदनन्तर उनका सब वृत्तान्त ज्ञात कर आश्रम में रहने का ही निवेदन किया। भगवान श्रीराम की वनवास एक प्रकार से उनकी साधनास्थली और अभीष्टप्राप्ति हेतु है, जिसके लिये उन्होंने अवतार लिया था। साधक-जीवन में सबसे अधिक बाधा साधक के स्वजन-परिजनों से होती है। श्रीराम ने इस स्थिति का अनुमान कर मुनि से कहा –

भगवन्नित आसन्नः पौरजानपदो जनः।
सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिममाश्रमम्।।
आगमिष्यति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः।
अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये।।[१]

– हे भगवन् ! मेरे नगर, जनपद के लोग यहाँ से बहुत निकट रहते हैं। अतः मैं समझता हूँ कि यहाँ मुझसे मिलना सुगम समझकर लोग इस आश्रम में मुझे और सीता को देखने के लिये आते रहेंगे। इसलिये यहाँ निवास करना मुझे उचित नहीं लगता। इसलिये –

एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम्।
रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा।।[२]

– भगवन्! किसी एकान्त स्थान में आश्रम योग्य उत्तम स्थान देखकर बताइये, जहाँ विदेहराजकुमारी जानकी सुखपूर्वक प्रसन्नता से रह सकें।

चित्रकूट की महिमा

श्रीराम की बातें सुनकर तपस्वी महामुनि भारद्वाज जी ने चित्रकूट की महिमा बताते हुये उन्हें वहीं रहने का परामर्श दिया –

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि।
महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः।।
गोलाङ्गूलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः।
चित्रकूट इत ख्यातो गन्धमादनसंनिभः।।[३]

– हे तात ! यहाँ से दस कोस (३० कोस) की दूरी पर एक सुन्दर और महर्षियों द्वारा सेवित परम पवित्र पर्वत है, जहाँ तुम्हें निवास करना होगा। उस पर्वत पर बहुत-से लंगूर विचरण करते हैं। वहाँ बन्दर और भालू भी रहते हैं। वह पर्वत चित्रकूट नाम से विख्यात है और गन्धमादन के समान मनोहर है।

चित्रकूट की महिमा बताते हुये ऋषि कहते हैं –

यावता चित्रकूटस्य नरः शृङ्गाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः।।
ऋषयस्तत्र बहवो विहत्य शारदां शतम्।
तपसा देवमारूढाः कपालशिरसा सह।।
प्रविविक्तमहं मन्ये तं वासं भवतः सुखम्।
इह वा वनवासाय वस राम मया सह।।[४]

– जब मनुष्य चित्रकूट के शिखरों का दर्शन कर लेता है, तब कल्याणकारी पुण्य कर्मों का फल पा लेता है और कभी पाप में मन नहीं लगाता है।

वहाँ बहुत-से ऋषि जिनके सिर के बाल वृद्धावस्थावशात् खोपड़ी की भाँति सफेद हो गये थे, वे तपस्या के द्वारा सैकड़ों वर्षों तक क्रीड़ा करके स्वर्गलोक तक चले गये हैं।

उस चित्रकूट पर्वत को मैं तुम्हारे लिये एकान्तवास के योग्य और सुखद मानता हूँ अथवा श्रीराम ! तुम वनवास के उद्देश्य से मेरे साथ इस आश्रम में ही रहो।

इतना कहकर ऋषि भारद्वाज जी ने पत्नी-भ्रातासहित प्रिय अतिथि श्रीराम की मनोवांछित वस्तुओं द्वारा विविध प्रकार से सेवा की। अतिथियों ने रात्री-विश्राम किया। प्रातःकाल आगे की यात्रा के लिये भगवान ने ऋषि की आज्ञा माँगी। मुनि ने कहा –

मधुमूलफलोपेतं चित्रकूटं व्रजेति ह।[५]
वासमौपयिकं मन्ये तव राम महाबल।

– हे महाबली श्रीराम ! तुम मधुर फल-मूल से सम्पन्न चित्रकूट पर्वत पर जाओ। मैं उसी को तुम्हारे लिये उपयुक्त

निवास-स्थान मानता हूँ।

चित्रकूट की प्राकृतिक छटा का वर्णन करते हुये मुनि ने कहा कि उस पर्वत पर विभिन्न हरे-भरे वृक्ष हैं। हाथियों का झुंड, मृग, बन्दर आदि पशु विचरण करते रहते हैं। मयूर, कोयल, टिट्टिभों के मधुर कलरव गूँजते रहते हैं। किन्नर, सर्पादियों का विचरण है। इसके साथ ही मन्दाकिनी नदी, कई जलस्रोत, गिरिशिखर, गुफा, कन्दरा और झरने हैं। वहाँ सीता के साथ विहार करते हुये तुम्हें आनन्द मिलेगा। तुम उसी पर्वत पर जाकर निवास करो।

इस प्रकार ऋषि ने विविध प्रकार से सेवा कर उन्हें आगे चित्रकूट वन-मार्ग का निर्देश किया और अपने आश्रम वापस आ गये और भगवान ने चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में जिन लोगों ने इन पथिकों का दर्शन किया, उनके तो भाग्य ही खुल गये। गोस्वामीजी लिखते हैं –

जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगम अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ ।।[६]

– जिन-जिन लोगों ने सिय सहित दोनों भाइयों का दर्शन किया, उनलोगों ने बिना श्रम के ही आनन्द के साथ भव-सागर को पार कर लिया। गोस्वामीजी यहाँ तक लिखते हैं कि आज भी स्वप्न में भी जिसके हृदय में बटोही राम-लक्ष्मण, सीता आ बसें, तो वह श्रीराम के परमधाम को पा जायेगा, जिसे कोई बिरले मुनि ही पाते हैं –

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ।
बसहु लखनु सीय रामु बटाऊ ।।
राम धाम पथ पाइहि सोई।
जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई ।।[७]

पथ के मनोहारी प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेते हुये भगवान चित्रकूट के मार्ग पर धीरे-धीरे अग्रसर होते हुये वाल्मीकिजी के आश्रम पहुँचे। जब भगवान श्रीराम अपनी वन-यात्रा में वाल्मीकिजी के आश्रम में आये और उन्होंने वहाँ के गिरि, वन, जलाशय, खग-मृग-विहार, भ्रमर-गुंजन आदि की रमणीय छटा को देखा, तो बहुत प्रसन्न हो गये। जब मुनि वाल्मीकि ने उनका आगमन सुना, तो उनका सादर स्वागत करने आगे आये। शीलवान श्रीराम ने मुनि को साष्टांग प्रणाम किया। मुनि ने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया और अपने प्राणप्रिय अतिथि को आश्रम में लाकर मधुर कन्द-मूल-फल अर्पित किया। भगवान प्रात:काल स्नान कर निकले थे। उन्हें भूख तो लगी ही होगी। श्रीराम-लक्ष्मण-सीता तीनों ने फल का भोग लगाया। उसके बाद मुनि द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर विश्राम करने चले गये। मंगलमूर्त्ति भगवान को देखकर मुनि वाल्मीकिजी अत्यन्त आनन्दित हो रहे हैं। वाल्मीकिजी ने भगवान के आगमन को अपना परम भाग्य माना। भगवान् ने अयोध्या की सारी घटनाएँ उन्हें बतायीं। उसके बाद भगवान ने कहा –

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सफल हमारे ।।
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई ।।
मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं ।।
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू ।।
अस जियँ जानि कहिअ सोई ठाऊँ।
सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ।।
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला ।
बासु करौं कछु काल कृपाला ।।[८]

हे मुनिराज ! आपके चरणों के दर्शन करने से आज हमारे सभी पुण्य सफल हो गये। अब आप मुझे उस स्थान पर रहने की आज्ञा दें, जहाँ मैं सीता और लक्ष्मण के साथ पर्णकुटी बनाकर कुछ समय निवास करूँ और जहाँ किसी भी मुनि को उद्वेग, अशान्ति न हो। क्योंकि जिन राजा से मुनि और तपस्वी दुख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही, अपने कुकर्मों से ही जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणों का सन्तोष सब मंगलों की जड़ है, भूदेव ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है। अत: यह सब सोच-समझकर आप मुझे वैसा स्थान बताने की कृपा करें।

भगवान श्रीराम के निवेदन पर मुनि वाल्मीकि ने विनोद करते हुये कहा –

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाऊँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाऊँ ।।

– आपने मुझे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? परन्तु मुझे यह पूछते संकोच हो रहा है कि आप कहाँ नहीं हैं, वह स्थान मुझे बता दीजिये। तब मैं आपके निवास के योग्य स्थान दिखा दूँ ! यह चुटकी लेने के बाद मुनि ने भगवान के व्यापक निवास को बताया और स्थूल रूप में चित्रकूट की महिमा बताते हुये वहीं रहने के लिये निर्देश किया। उन्होंने कहा कि –

शेष भाग पृष्ठ १५८ पर

सदा विद्यमान मित्र, दार्शनिक और गुरु स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज

स्वामी गौतमानन्द जी महाराज

महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा

अनुवादक – स्वामी ब्रह्मेशानन्द, वाराणसी

यह वक्तव्य लगभग साठ वर्ष पूर्व का है। अत: मैं प्रारम्भ से ही स्वीकार करता हूँ कि इसमें कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं। हममें से अधिकांश के लिये बैंगलुरु का रामकृष्ण आश्रम, या रामकृष्ण मठ, पूज्य यतीश्वरानन्द जी के साथ एक हो गया था। अत: जब भी मैं उस आश्रम के बारे में सोचता हूँ, तो मुझे उनसे सम्बन्धित घटनाएँ ही याद आती हैं।

बैंगलुरु आश्रम

मैं सर्वप्रथम बंगलूर आश्रम सन् १९५१ में गया था। मैंने कॉलेज से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण ही की थी। वह कृष्ण-जन्माष्टमी की सन्ध्या थी। मैं अपने एक मित्र के साथ आश्रम पहुँचा और तब बालक-संघ के सभागृह में प्रविष्ट हुआ, जो आगन्तुकों के कमरे के ऊपर था। हाँ, मैंने स्वामी त्यागीशानन्द को श्रीकृष्ण पर प्रवचन देते सुना। उनके बाद स्वामी यतीश्वरानन्द जी बोले। अन्तिम वक्ता श्री सीतारमैया थे। सभी भाषण अच्छे थे, लेकिन वहाँ बैठे दो संन्यासियों ने मुझे प्रभावित किया। स्वामी त्यागीशानन्द जी ऊँचे, गौरवर्ण तथा एक सफेद लम्बी दाढ़ी युक्त थे। स्वामी यतीश्वरानन्द जी भी गौरवर्ण थे, पर थोड़े छोटे कद के, सुदृढ़ थे तथा उनका चेहरा साफ था। वे रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी थे, इसके अतिरिक्त मैं उनके बारे में कुछ भी नहीं जानता था। केवल तीन वर्ष बाद ही मैं धीरे-धीरे उनकी आध्यात्मिक श्रेष्ठता के सम्बन्ध में जान पाया था। दुर्भाग्य से तब तक स्वामी त्यागीशानन्द जी का देहावसान हो गया था। फिर भी उनके तपस्वी जीवन तथा गहरी आध्यात्मिक बुद्धि के बारे में सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया था।

१९५४ का वर्ष मेरे जीवन में कुछ अस्थिरतापूर्ण था। मैं जीवन के लक्ष्य को तथा किसी ऐसे व्यक्ति को खोज रहा था, जो मुझे उस लक्ष्य की दिशा प्रदान कर सके। सर्वप्रथम मेरा एक मित्र मुझे स्वामी यतीश्वरानन्द जी के पास ले गया। आश्रम की सन्ध्या आरती हो गयी थी। स्वामी यतीश्वरानन्द जी (अब से स्वामीजी) मुख्य द्वार के निकट बिजली के एक खम्भे के नीचे खड़े थे। मेरे मित्र ने स्वामीजी से मेरा परिचय कराया और मैंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। मैंने 'टी-शर्ट' और एक सामान्य पैन्ट पहन रखा था। यह स्वामीजी की महानता थी कि उन्होंने मेरे सामान्य रूप से किये गये प्रणाम और सामान्य ड्रेस को महत्त्व नहीं दिया। वे सोच सकते थे, यह लड़का साधुओं की आवभगत करना नहीं जानता। उन्होंने मेरे प्रणाम का उत्तर हाथ जोड़कर दिया और मेरी साधना के विषय में पूछा। मैंने उन्हें कहा कि मैं सुबह और सन्ध्या को गायत्री जप करता हूँ और भगवद्गीता पढ़ता हूँ। उन्होंने कहा, 'यह पर्याप्त नहीं है।' यह सोचकर कि मुझे प्राणायाम करना चाहिये, मैंने पूछा, ''स्वामीजी क्या

आप मुझे प्राणायाम सिखा देंगे?'' उन्होंने अस्वीकार करते हुये कहा, बाहर के लोगों को प्राणायाम नहीं सिखाते। मैंने सोचा कि सम्भवत: वे केवल संन्यासियों को ही सिखाते हैं।

उनसे मेरी पहली भेंट इसी प्रकार सामान्य हुई, लेकिन मैं उनका आनन्द से पूर्ण चेहरा भूल नहीं पाया। मैं सोचने लगा कि क्या एक आध्यात्मिक व्यक्ति इतना स्वस्थ, सबल और सुगठित हो सकता है। मैं महात्मा गाँधी का प्रशंसक था। अत: सोचता था कि साधु व्यक्ति को दुबला-पतला और साँवला होना चाहिए।

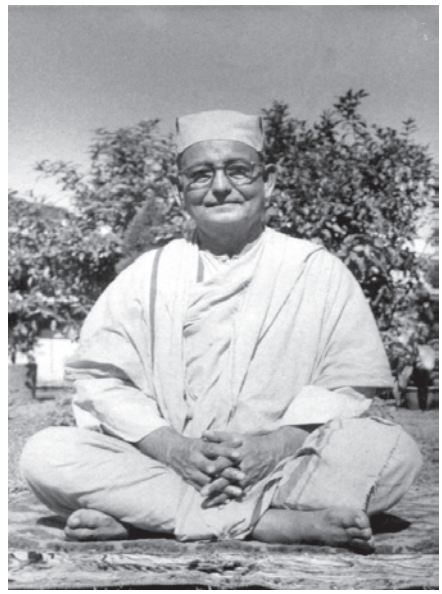

स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज

स्वामीजी नवागतों से निम्न पुस्तकें पढ़ने को कहा करते थे – Eternal companion (ध्यान, धर्म तथा साधना, स्वामी ब्रह्मानन्द के उपदेश)। स्वामी विरजानन्द कृत Towards The Goal Supreme (परमार्थ प्रसंग) The Gospel of Shri Ramakrishna (श्रीरामकृष्णवचनामृत) और Ramakrishna the Great Master (श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग)। इसके अतिरिक्त उन्होंने मुझे ब्रदर लॉरेंस की Practice of the Precent of God पुस्तक की टाईप की हुई एक प्रति दी, जिसके विषय में उनकी बहुत उच्च धारणा थी। मुझे भी वह पुस्तक बहुत प्रेरणादायक लगी।

जब मैंने उन्हें कहा कि मैंने अपने माता-पिता दोनों खो दिया है, तो उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा, ''चिन्ता मत करो। श्रीरामकृष्ण तुम्हारे माता-पिता ही नहीं, सर्वस्व हैं।'' कालान्तर में स्वामी यतीश्वरानन्द जी ही मेरे पिता तुल्य हो गये थे, यहाँ तक कि दिखने में भी पिता समान थे। उनका गठन मानों सिंह-सा था। चलते समय यदि उन्हें पीछे देखना होता, तो वे अपने सारे शरीर को घुमाये बिना सिंह के समान अपने चेहेरे को थोड़ा-सा घुमा लेते थे। मैंने न जाने कितनी बार उन्हें इस गौरवशाली भंगिमा में देखा है। मैं उनके पीछे रहता था और उनसे मिलते ही उनके चरणों में नत हो जाता था, चाहे वे आश्रम में हों या निकटवर्ती विद्यार्थी भवन में जाते समय सामने सड़क पर हों।

स्वामीजी से मिलने के लिए मैंने नियमित रूप से शनिवार, रविवार और छुट्टियों के दिनों में आश्रम जाना प्रारम्भ कर दिया। बाद में उन्होंने मुझे आश्रम में रात्रि-यापन की भी कृपापूर्वक अनुमति प्रदान की। उन्होंने मुझे युवकों के लिए होने वाली साप्ताहिक आध्यात्मिक कक्षाओं में भी सम्मिलित होने दिया। इन युवकों में से कई बाद में रामकृष्ण संघ के संन्यासी बने थे।

मेरी दो बहनें, मेरा छोटा भाई तथा मैं, हम सभी उनके शिष्य थे। कई रविवारों को हम सभी बहुत सबेरे आश्रम चले जाते थे। स्वामीजी प्राय: ८.३० बजे कमरे से बाहर टहलने के लिए आते थे। मैनेजर स्वामी ने हमें सावधान कर दिया था कि इसके पहले स्वामीजी को कष्ट न दें और उनके कमरे से बाहर आने तक प्रतीक्षा करें। लेकिन अल्प-वयस्क होने के कारण हम अधीर थे। मैनेजर स्वामी के चले जाने पर हम स्वामीजी के कमरे के निकट जाकर 'स्वामीजी' कहकर धीरे से पुकारते थे। वे अन्दर से ही उत्तर देते, 'हाँ हाँ, मैं आ रहा हूँ।' वे दरवाजे के पर्दे से हमें देखकर १,२,३,४, हमें गिनते और पूछते, 'घर पर और कोई बचा है क्या?' तत्काल उनका तथा हम सभी का एक साथ उच्च हास्य होता।

स्वामीजी के साप्ताहिक रविवारीय प्रवचन प्रेरणाप्रद होते थे। श्रोता पर्याप्त होते थे, लेकिन हाल पूरा भरा नहीं होता था। वे इस प्रकार बोलते थे मानो वे एक 'निर्देशित ध्यान Guided Meditations'' करा रहे हों। एक बार प्रवचन के पूर्व उन्होंने अपनी यात्रा का एक अनुभव सुनाया। वे कलकत्ता से लौट रहे थे। रास्ते में वे अजन्ता और ऐलोरा गुफाएँ देखने के लिए उतरे, जो गुफाएँ, सुन्दर चित्रों और मूर्तियों के लिये प्रसिद्ध हैं। गुफाएँ स्टेशन से कुछ दूर थीं और उन्हें वहाँ धूल से भरे रास्तों पर से कार से जाना पड़ा। गुफाएँ देखते-देखते तक उन्हें तेज जुकाम हो गया। वृत्तान्त का उपसंहार करते

हुए उन्होंने कहा, ''देखो यह सीधा सत्य है; सभी वैषयिक भोगों के लिए तुम्हें भारी कीमत चुकानी होगी।''

१९५४ में बंगलूर आश्रम में कुछ भवन थे और अधिक वृक्ष तथा खेलने के मैदान थे। स्वामीजी सन्ध्या के समय प्रांगण में चारों ओर काफी पैदल चलते थे। वे निवास भवन से प्रारम्भ कर माँ सारदा पहाड़ी होते हुए (आधुनिक श्रीसारदा देवी स्मृतिभवन के निकट) अतिथि भवन आते थे, और देवालय के सामने पहुँचते थे, जहाँ आधुनिक मन्दिर विद्यमान है। (सारदा देवी पहाड़ी पर जिस भक्ति-भाव से वे प्रणाम करते थे, वह दर्शनीय होता था)। रास्ते में वे हम जैसे युवकों से बातें करते थे। हम उनके साथ हमारी समस्याओं पर खुलकर वार्तालाप करते थे। वे वर्तमान रामकृष्ण सभांगन के निकट की पत्थर की बेंच पर बैठकर हमें उचित मार्गदर्शन प्रदान करते थे।

वे युवकों के लिए एक साप्ताहिक आध्यात्मिक क्लास लिया करते थे। एक बार ऐसी एक क्लास में उन्होंने एक युवक के बारे में बताया, जिसने माँ सारदा से अपनी दो विपदाओं के बारे में कहा था। प्रथम जब वह बहुत बीमार था और द्वितीय जब उसने विवाह किया। स्वामीजी क्लास के बाद हँसते हुए पूछते थे, ''इन दोनों में से कौन-सी विपदा बड़ी है – बीमार-विपदा या विवाहित होना?'' पुन: हम युवकों के लिये भोजनालय में भोजन के लिये उनके निकट बैठना एक रोचक अनुभव होता था। उसके बाद हममें से कई उनके कप और थाली धोने के लिए लेने के लिए दौड़ पड़ते थे। इस सेवा के लिए नियमित होड़ होती थी। आश्रम का बागवान स्वामीजी के सामने की लाईन में उनके ठीक सामने बैठता था।

मेरे स्वामीजी से मिलने के एक बर्ष बाद मेरे एक मित्र ने मुझे कहा कि स्वामीजी ने उससे पूछा है, क्या मैं श्रीनिवास (मेरा पूर्वाश्रम का नाम) को संन्यासी बनने को प्रेरित करूँ?'' यह सुनने पर मुझे संन्यास जीवन के लिये तैयार होने की बहुत प्रेरणा मिली। इस प्रकार स्वामीजी युवकों को उच्चतर जीवन के लिए उपरोक्त रूप से प्रेरित करते थे।

एक बार उन्होंने हमें कहा – ''मल्लेश्वरम् (जहाँ से मैं आया था) एक सांस्कृतिक स्थान है। मैं वहाँ आश्रम की एक शाखा प्रारम्भ करना चाहूँगा। मेरे मल्लेश्वरम् में रहते समय स्वामीजी कम से कम तीन बार वहाँ गये थे और उस स्थान के युवकों द्वारा आयोजित श्रीरामकृष्ण जयन्ती सामारोह की अध्यक्षता की थी। ऐसे प्रत्येक सामारोह के बाद एक युवक ब्रह्मचारी के रूप में आश्रम में सम्मिलित होता था। मेरे द्वारा तीसरी बार समारोह का आयोजन करने के बाद मैंने भी आश्रम में योगदान किया। स्वाभाविक ही वहाँ के कई माता-पिता इससे अप्रसन्न थे। उन्होंने सदा के लिए उन कार्यक्रमों को बन्द करने की योजना बनाई और वे सफल हो गये।

मुझे याद है कि मेरे द्वारा आयोजित कार्यक्रम बहुत अच्छा हुआ था और लगभग ५००-६०० लोगों ने उसमें भाग लिया था। दो दिन बाद मेरे एक मित्र ने मुझे कहा कि स्वामीजी ने कहा है, ''कार्यक्रम बहुत अच्छा हुआ। श्रीनिवास बहुत गर्व अनुभव कर रहा होगा।'' यह सुनकर मुझे आघात लगा। मैं जितनी जल्दी हो सका आश्रम पहुँचा और स्वामीजी से संकुचित होकर बोला – ''स्वामीजी, मुझे गर्वित होने की क्या बात है। कार्यक्रम के लिये आवश्यक सभी वस्तुएँ, वरिष्ठ स्वामीजी लोग, जो जो बोले, पूजा का सामान आदि सब तो आश्रम से ही आया था। मेरे लिये गर्वित होने का क्या कारण है?'' इस पर स्वामीजी प्रसन्न हुए। मैं भी झटके से बचा। इस प्रकार मेरे अंहकार को स्वामीजी ने जड़ में ही नष्ट कर दिया था।

स्वामीजी ने महिला आध्यात्मिक साधकों को प्रोत्साहित किया और उनके लिए साप्ताहिक आध्यात्मिक कक्षायें प्रारम्भ कीं। उनके उपदेशों से प्रेरित हो उनमें से कई सारदामठ की संन्यासिनियाँ बन गयी थीं।

नवरात्रि के दिनों में आश्रम के मंदिर में विशेष पूजा और हवन होता था। हम युवक-भक्त मंदिर में पुरुषों की ओर बरामदे में बैठते थे। हम स्वामी यतीश्वरानन्द जी को मंदिर में एक कोने में बैठे माला से जप करते देखते थे। उनका चेहरा शीतल रहता था। हमें उनके ओठ हिलते दिखते थे तथा वे महान आनन्द से पूर्ण रहते थे। मेरे लिये वह एक प्रेरणास्पद दृश्य था।

सन्ध्या आरती का घंटा बजते ही स्वामीजी भक्तों को आश्रम के मन्दिर में भेज देते थे। वे स्वयं अपने कमरे में चले जाते थे और बत्तियाँ बन्द कर देते थे। आरती और भजन के बाद वे प्रार्थना भवन के सामने आकर पेड़ के नीचे पत्थर की बेंच पर बैठ जाते थे, जिससे भक्त उन्हें प्रणाम

कर सकें। उसके बाद वे लोग घर लौट जाते थे। बस से घर जानेवाली युवतियों के होने पर वे दो युवकों को बुलाकर उनके बस स्टैण्ड तक साथ जाने को और लौट कर बताने को कहते थे। उन युवकों में मैं भी कई बार होता था।

वे ऐसे युवकों में अनासक्ति का भाव जगाते थे, जो मठ में योगदान करना चाहते थे, पर किसी कारण से असमंजस में रहते थे। स्वामीजी उनसे कहते थे, ''कन्याएँ लड़कों से अच्छी हैं, कन्याएँ लड़कों से अच्छी हैं।'' युवक उनसे पूछते, 'क्यों', स्वामीजी? वे कहते, ''उसने उस दिन सारदा मठ में योगदान कर लिया है। इसलिए मैं कहता हूँ, लड़कियाँ लड़कों से अच्छी हैं।'' युवक की स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है, ''मैं भी योगदान करूँगा।'' 'मैं देखूँगा कब करोगे', स्वामी जी कहते। अधिकांश समय वह युवक मठ में आ जाता था।

एक निष्ठावान श्रद्धालु युवक ने स्वामीजी से दीक्षा प्राप्त की। अपने नव उत्साह में वह अपने घर घंटों साधना करने लगा। उसके एक मित्र ने स्वामीजी से कहा – ''स्वामीजी, वह जप-ध्यान आवश्यकता से अधिक कर रहा है। क्या आप उसके विपरीत उसे कुछ नहीं कहेंगे?'' इस पर स्वामीजी ने कहा – 'तुम इसकी चिन्ता मत करो। उसे जितना चाहे, उतना करने दो। निश्चित जानो, हम दूसरी बातों में अति भले ही करें, पर ध्यान और जप में कभी नहीं।'' कितना महान सत्य है, यह!

वे चाहते थे कि युवक साफ-सुथरे और प्रसन्न रहें। हममें से एक बिना दाढ़ी बनाये आया। स्वामीजी ने गौर से उसे देखा और उसे दिखाते हुए हमें कहा – ''यह सदा आनन्दमय ब्रह्म का ध्यान करता है, पर चेहरा उदास बनाये रहता है।'' इसका प्रभाव पड़ा और वह नियमित रूप से दाढ़ी बनाने लगा।

वे युवाओं को शारीरिक दृष्टि से बलवान और मन से और आध्यात्मिक दृष्टि से सक्रिय रहने को प्रोत्साहित करते थे। उनके परामर्श से मैं एक व्यायामशाला का सदस्य बना था। दो वर्ष बाद जब मैंने अपने दिल्ली केन्द्र में योगदान दिया, तब तक मेरा स्वास्थ्य काफी सुधर गया था। जब स्वामीजी ने मुझे वहाँ देखा, तब मैं मोटा हो गया था। उन्होंने कहा ''बस, बस, अधिक वजन मत बढ़ाओ।''

स्वामीजी प्राय: गम्भीर प्रतीत होते थे। बाद में मैंने जाना कि यह उनके अन्तर्मुखी स्वभाव का लक्षण था। मैंने अपने कुछ मित्रों का स्वामीजी से परिचय कराया था, लेकिन उनके अन्तर्मुखी भाव के कारण वे उनसे अधिक भेंट नहीं कर सके थे। लेकिन जो लोग उनसे घनिष्ठ हो पाये थे, वे जानते थे कि वे प्रेमिक और प्रसन्न प्रकृति के थे।

मेरी एक सम्बन्धी महिला ने स्वामीजी से ध्यान और आध्यात्मिक जीवन के विषय में प्रारम्भिक निर्देश प्राप्त किये थे। विवाह के बाद वह अपने पति के घर चली गयी। नया परिवार धर्म के विषय में कट्टरपंथी था और रामकृष्ण आश्रम के विषय में अनभिज्ञ था। वह महिला स्वामीजी से दीक्षित होने के प्रति बहुत आग्रही थी। उसने मुझसे यह आग्रह किया और सुझाव दिया कि यदि उसकी दीक्षा किसी रविवार के दिन प्रात: ७ से ११ बजे के बीच हो सके, तो अच्छा हो, क्योंकि उस समय वह घर से बाहर रह सकती है। मैं नहीं जानता था कि स्वामीजी इसे स्वीकार करेंगे। लेकिन मैंने जब उसका निवेदन उन्हें बताया, तो वे शीघ्र राजी हो गये और उसे दीक्षा के लिये सभी तैयारियाँ करने को मुझे कहा। महिला के निवेदन के अनुरूप एक रविवार को उन्होंने उस पर कृपा की। बाद में उसके परिवार के कुछ और सदस्यों को भी स्वामीजी ने दीक्षा दी थी। स्वामीजी इस महिला को 'मिशनरी' कहा करते थे।

एक अन्य महिला नियमित रूप से स्वामीजी से आध्यात्मिक निर्देश पाती रहती थी और उस पर उनकी दीक्षा-कृपा भी हुई थी। उनके प्रभाव से वह अधिक साहसी बनी और कर्नाटक विश्वविद्यालय में प्राचार्या बनी। वह किसी कार्य-विशेष के लिये विदेश भी गयी थी। उसके विषय में स्वामीजी कहते थे, ''देखो, उसका विश्वास कैसे वर्धित हुआ है।''

एक गाँधीवादी युवक वर्धा (मगनवाड़ी) महाराष्ट्र में कार्य करता था। वह विनोबा भावे के भूदान यज्ञ का भी निष्ठावान अनुयायी था। स्वामीजी ने उसे उनसे मिलने के दस दिन बाद ही दीक्षा दी। साधारणतया दीक्षा प्राप्त करने के पूर्व लोगों को लगभग एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी तथा आश्रम के साथ सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता था। इस युवक ने बाद में अपने जीवन को रामकृष्ण मिशन की सेवा में समर्पित किया था। वह मध्यप्रदेश के एक महत्त्वपूर्ण निजी आश्रम का सचिव था, जो बाद में रामकृष्ण संघ का एक शाखा केन्द्र बना।

स्वामीजी द्वारा दीक्षित एक अन्य युवक सारे जीवन अविवाहित ही रहा और एक गाँधीवादी युवक नेता के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उसके प्रभाव से चंबल के कुछ डाकुओं का जीवन परिवर्तित हो गया और वे हिंसारहित शान्ति का जीवन जीने लगे।

एक गृहस्थ युवती ने अपनी निजी शिक्षक से संस्कृत में दक्षता प्राप्त कर ली। उसने स्वामीजी से पूछा कि क्या उसे परीक्षा देकर प्रमाण पत्र प्राप्त करना चाहिए? स्वामीजी ने उससे कहा, ''यह आवश्यक नहीं है। तुमने ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यही पर्याप्त है।''

एक दिन एक युवक ने कहा, ''गायत्री मन्त्र में क्या है?'' स्वामीजी ने उसे ठीक करते हुए कहा, ''मूर्ख मत बनो। गायत्री एक महान प्रार्थना है।'' एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा था कि गायत्री मन्त्र से अधिक एक प्रार्थना है, वह जप के लिए बहुत अधिक लम्बी है। वे उन लोगों को जो गायत्री मंत्र द्वारा दीक्षित थे, उन्हें अपने इष्ट-मंत्र का जप करने के पूर्व कुछ बार गायत्री मंत्र को कर लेने के लिए प्रोत्साहित करते थे।

स्वामीजी के साथ कुछ वर्षों तक रहने के बाद मुझे लगने लगा कि मुझे एक ब्रह्मचारी के रूप में रामकृष्ण मिशन में योगदान करना चाहिए। स्वामीजी मेरे घर की कुछ बड़ी समस्याओं को जानते थे और उन्होंने उनकी मुझे स्मृति दिलाई। मैंने कहा, ''स्वामीजी समस्यायें तो सदा ही रहेंगी, गुरु महाराज उनको देखेंगे।'' लेकिन उन्होंने अपनी समझदारी के अनुसार मुझे शीघ्रता करने से मना किया। उन्होंने कहा, ''गुरु महाराज से प्रार्थना करो, वे तुम्हारी सारी समस्याएँ सुलझा देंगे। तब तुम शान्त मन से संघ में योगदान कर सकोगे।'' कुछ महीनों में सारी समस्याएँ सुलझ भी गयीं और मैंने संघ में योगदान कर लिया। सचमुच यह उनकी कृपा ही थी, जिसने ऐसा चमत्कार किया।

उन्होंने मुझे एक दूर-दराज केन्द्र में योगदान करने के लिए भेजा और मुझे दो निर्देश दिये – पहला, सदा याद रखना कि कोई भी स्थान आदर्श नहीं होता। सभी स्थानों में सुविधायें और असुविधाएँ होंगी। सुविधाओं का उपयोग अपने आत्मविकास के लिए करो और असुविधाओं की उपेक्षा कर दो। दूसरा, मुझे उनको बदनाम नहीं करना चाहिए। मेरे कारण उनका नाम बदनाम न हो। मेरे मिशन में केन्द्र विशेष में योगदान देने के प्रथम तीन वर्ष मेरे लिये कष्टदायक थे। उनके निर्देशों के फलस्वरूप मैं संन्यास जीवन को पकड़े रह सका। उन्होंने मुझे एक और महत्त्वपूर्ण निर्देश दिया था। ''सदा यह सोचो कि तुम कितना दे सकते हो, न कि कितना तुम पा सकते हो।''

एक बार उन्होंने मुझसे कुछ पत्र लिखवाये, जो मैंने शॉर्टहैन्ड में लिखा। इसके बाद जब मैंने उन्हें टाईप किये हुए पत्र हस्ताक्षर के लिए दिये, तो मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा, ''अगली बार लाँगहैन्ड में लिखना उचित होगा।'' इस प्रकार उन्होंने पत्र की गलतियों को बताया।

सन् १९५७ में स्वामीजी नये मन्दिर के प्रतिष्ठा-समारोह में भाग लेने के लिये दिल्ली आये। जिस दिन श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द के चित्रों के साथ जुलुस निकलना था, उस दिन ठंड थी। स्वामीजी खुले पैर माँ सारदा का चित्र लेकर जुलुस में सम्मिलित हुए थे। इससे उन्हें सर्दी लग गयी। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने का भार मुझ पर था। मैंने उनसे यह कहते हुए कभी नहीं सुना कि उन्हें ठंड लगी है या बुखार है। अचम्भा यह है कि उन्होंने इसके बारे में एक भक्त के बच्चे (पुत्र) से कहा। यह सुनकर मैं दुखी हुआ और अचम्भित भी हुआ। वे अपने स्वास्थ्य के बारे में किसी से शिकायत नहीं करना चाहते थे। फिर भी उन्होंने अपनी असुविधा को अपने ढंग से व्यक्त कर दिया।

नयी दिल्ली की ऑल-इंडिया इंस्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेंस के डायरेक्टर महापुरुष शिवानन्द महाराज के शिष्य थे। वे बीच-बीच में स्वामीजी से भेंट करते रहते थे। एक बार उन्होंने पूछा – स्वामीजी, हमारे अनेक कार्यों के कारण हमें सुबह और सायं काल के लिये बहुत कम समय मिलता है। हमारे लिये क्या उपाय है?'' स्वामीजी ने उत्तर दिया – ''नोटा (नट बिहारी) बाबू, स्वामी लोग भी सुबह और सायं काल ध्यान में कितना समय लगा पाते हैं? अपने सभी खाली क्षणों को भगवन्नाम से भर देना ही सर्वोत्तम उपाय है। इस प्रकार हम जप और ध्यान का भाव निरन्तर बनाये रख पायेंगे।''

सन् १९६० में ट्रेनिंग के लिए दो वर्षों के लिये बेलूड़ मठ जाने के पूर्व मैंने स्वामीजी से उनकी कृपा के लिये पत्र लिखा – उन्होंने उत्तर दिया, ''मुझे प्रसन्नता है कि तुम बेलूड़ मठ जा रहे हो। वहाँ पर सदा प्रवाहित हो रहे विशेष

आध्यात्मिक प्रवाह के साथ सम्पर्क स्थापित करना। तब तुम्हारी आध्यात्मिक साधनाएँ आसान हो जाएँगी।'' वे सदा कहा करते थे कि गुरु महाराज सर्वत्र विद्यमान हैं, फिर भी बेलूड़ मठ में उनकी अवस्थिति का विशेष रूप से अनुभव होता है।

जब मैं दिल्ली केन्द्र में था, तब मुझे एक अलार्म-घड़ी की आवश्यकता का अनुभव हुआ। मैंने स्वामीजी से उसके बारे में कहा। उन्होंने इस पर कुछ नहीं कहा। मैं भी चुप रहा और वह बात भूल ही गया। सन् १९६१ के नवम्बर-दिसम्बर महीनों में वे बेलूड़ मठ आये, जब मैं ट्रैनिंग सेन्टर में था। एक दिन सन्ध्या को जब मैं उनके कमरे में उन्हें प्रणाम करने के लिये गया, तो मैंने उनकी टेबल पर एक बिल्कुल नयी अलार्म घड़ी देखी। उन्होंने कहा, ''श्रीनिवास, यह तुम्हारे लिये है। तुम्हें अच्छी लगी?'' मैं कुछ भी समझ नहीं सका। मैंने उत्तर दिया, ''स्वामीजी यह घड़ी किसकी है?'' उन्होंने कहा – ''हाँ, यह तुम्हारी है। जब तुम दिल्ली में थे, तब तुमने एक घड़ी माँगी थी। यदि मैं तुम्हें तब देता, तो दिल्ली केन्द्राध्यक्ष मुझे गलत समझ लेते, अत: मैं तुम्हें अब दे रहा हूँ।'' स्वामीजी मेरी चार वर्ष पुरानी माँग को भूले नहीं थे। इस प्रकार के पिता जैसे प्रेम की घटनाओं को याद कर मैं अपने आँसू रोक नहीं सकता।

दिल्ली से मेरा स्थानान्तरण खाली आदिवासियों की सेवा के लिये प्रसिद्ध हमारे चेरापूँजी आश्रम में हुआ था। वहाँ पहुँचने के पूर्व मैंने स्वामीजी से कृपा-प्रार्थना की। उन्होंने लिखा, 'प्रतिदिन कार्य के लिये जाने के पूर्व गुरु महाराज से प्रार्थना करो तथा जप और ध्यान करो। भगवद वायु को तुम्हें अग्रसर करने दो। प्रार्थना करो। सदा प्रार्थना करो –

तेजोऽसि तेजो मयि देहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि देहि।

बलमसि बलं मयि देहि। ओजोऽसि ओजो मयि देहि। मन्युरसि मन्युं मयि देहि।

– अर्थात् हे प्रभु आप तेज स्वरूप हैं, मुझे तेज प्रदान करें। आप अनन्त वीर्य स्वरूप हैं, मुझे वीर्य प्रदान करें। आप अनन्त बलस्वरूप हैं, मुझे बल प्रदान करें। आप अनन्त ओज स्वरूप हैं। मुझे ओज प्रदान करें। आप अनन्त साहस स्वरूप हैं, मुझे साहस प्रदान करें।

मुझे विश्वास है कि तुम सफल होओगे, सफल होओगे। उनके इस आशीर्वाद ने मेरे लिए महान शक्ति और एक टॉनिक का काम किया। मुझे वहाँ रहते समय तीन वर्षों के बाद एक के बाद एक कठिन समस्या का सामना करना पड़ा। उनके शक्तिशाली आशीर्वाद के फलस्वरूप मैं बिना क्षति के उस स्थिति से निकल सका। **(अगले अंक में समाप्य)**

पृष्ठ १५२ का शेष भाग

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ।।
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू ।।
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी ।।
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।।
अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं ।।
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू।।
चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाई ।।[९]

मुनि ने चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहा कि चित्रकूट पर निवास कीजिये। वहाँ आपके लिये सभी सुविधायें हैं। सुहावन पर्वत, सुन्दर वन है, हाथी, हिरण, सिंह और पक्षियों का विहारस्थल है। उसके बाद चित्रकूट धाम की आध्यात्मिक महिमा का वर्णन करते हुये ऋषि ने कहा कि वहाँ पुराणों द्वारा प्रशंसित गंगाजी की धारा मन्दाकिनी नामक पवित्र नदी है, जिसे अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूयाजी अपने तपोबल से लायी थीं। इतना ही नहीं, वहाँ अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं और योग, जप-तप करते हुये साधना करते हैं।

चित्रकूट की महिमा का वर्णन ऋषि भारद्वाज और वाल्मीकिजी ने भगवान को सुनाई थी। ऐसी चित्रकूट की महिमा है, जिस पावन भूमि में भगवान ने निवास किया और विचरण किया। वहाँ की एक-एक धूलि और काँटे तक पवित्र हैं, जो भगवान श्रीराम के पावन चरणों के स्पर्श से धन्य हो गये। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग ५४, श्लोक २४,२५ **२.** वही, श्लो. २६, **३.** वही, श्लो. २८, २९ **४.** वही, श्लो. ३०-३२ **५.** वही, श्लो.३८ **६.** श्रीरामचरितमानस, २/१२३ **७.** वही, २/१२३/७ **८.** वही, २/१२५/१-६ **९.** वही, २/१३१/१-८, दोहा, १३२

रामगीता (६/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

बुद्धि में आप किसी बात का निश्चय करना चाहते हैं। बार-बार लगता है कि यह ठीक है कि नहीं। क्या करें! लक्ष्मणजी ने कहा, आप ऐसा उपदेश दीजिए कि शोक, मोह, भ्रम तीनों दूर हो जायें। प्रभु ने कहा कि उपाय यह है कि तुम मन, बुद्धि और चित्त तीनों लगाओ। तीनों की अगर समस्या है, तो तीनों को यहाँ जोड़ो। अगर तुम ध्यान से सुनोगे, तो मन की समस्या का भी, बुद्धि की समस्या का भी और चित्त की समस्या का भी समाधान तुम्हें मिलेगा। लक्ष्मणजी जीवों के परमाचार्य हैं, उनकी जिज्ञासा के माध्यम से संसार के सभी भक्तों को उनके इस रहस्य को हृदयंगम करने का मार्ग प्राप्त होता है। यही संकेत मानस के विभिन्न पात्रों के चरित्र में दिखाई देता है। इसका अभिप्राय है कि जब तक इन तीनों शोक, मोह और भ्रम का समाधान नहीं होगा और जब तक मन, बुद्धि और चित्त इन तीनों को हम ठीक-ठीक स्थिति तक नहीं पहुँचा सकेंगे, तब तक हमारे अहं का विसर्जन नहीं होगा या कहिए कि अहं की पूर्णता नहीं होगी। दोनों पक्ष हैं, भक्ति में अहं का विसर्जन है और ज्ञान में अहं की परिपूर्णता है। दोनों का अपने आप में निर्वहण हो जाता है। यह तो एक विश्लेषण था। अब मैं चेष्टा करूँगा कि पात्रों के माध्यम से उसे आपके सामने स्पष्ट किया जाये।

कल महाराज दशरथ के चरित्र की चर्चा चली थी। महाराज श्री दशरथ पूर्व जन्म में मनु थे और मनु के रूप में उन्होंने धर्म का, कर्तव्य कर्मों का पूरी तरह पालन किया था। उन्होंने स्मृति का निर्माण करके प्रजा के लिये भी एक आचार संहिता – आचार और धर्म की प्रस्तुति कर दी। जब वे वृद्ध हो गए, तब उनको लगा कि धर्म का जो परिणाम होना चाहिए, वह मेरे जीवन में नहीं आया। अब धर्म के दो परिणाम हैं। धर्म का एक परिणाम तो यह है कि व्यक्ति को धर्म करने पर, पुण्य करने पर स्वर्ग मिलता है। स्वर्ग में अनगिनत भोग मिलते हैं, जो यहाँ प्राप्त नहीं होते। यहाँ जो भोग प्राप्त होते हैं, उसे भोगने की सामर्थ्य नहीं होती। स्वर्ग में वह पूरा हो जायेगा। इसलिए एक तो पुण्य, धर्म करके व्यक्ति अगले जन्म में स्वर्ग में उसका परिणाम पाने की चेष्टा करता है। वह प्रसिद्ध लघु गाथा आपने सुनी होगी। कोई विरक्त महात्मा थे। बिना वस्त्र का रहने का अभ्यास था। लोग श्रद्धा से जाते थे। एक बहुत समृद्ध व्यक्ति गये और उन्होंने महाराज के शरीर पर पशमीने का शाल ओढ़ा दिया। महात्माजी ने कहा कि इसकी आवश्यकता नहीं है। तो वे सज्जन विनोदी थे। बोले, महाराज, हम तो व्यापारी हैं, यह भी मेरा एक व्यापार ही है। क्या? बोले – मैंने सुना है कि महापुरुष को कुछ दीजिए, तो अगले जन्म में उससे हजारों गुना मिलता है। महात्माजी ने भी उसका विनोद भरा उत्तर दिया। उन्होंने शाल उतार कर उन्हें देते हुए कहा कि इसे ले लो। क्यों? बोले – एक तो तुम अभी ही ले लो, बाकी नौ सौ निन्नयानबे तुम बाद में पाते रहना। अब इससे अधिक मैं क्या कर सकता हूँ। तो उसमें व्यंग्य यही है कि वह कई गुना होकर हमें मिलेगा। माघ में दान करें, फाल्गुन में दान करें, तीर्थ में, व्रत में दान करें, तो उसके परिणामस्वरूप क्या-क्या मिलता है, इसकी बड़ी लम्बी सूची हमारे शास्त्रीय ग्रन्थों में है। गोस्वामीजी से किसी ने पूछा कि बड़ा फल लिख दिया गया है। इस महीने में नहाइए, तो यह हो जाये या यह व्रत कीजिए, तो यह हो जाये, तो आपको क्या ठीक लगता है? गोस्वामीजी ने मीठा उत्तर देते हुए कहा –

पायहि पै जानिबो करम फल भरि भरि वेद परोसो।
विनयपत्रिका १७३

परोस तो बहुत दिया गया है। सामने परोसने के स्थान पर आश्वासन दे दिया जाये कि आप वहाँ चलिए, वहाँ पर आप को यह खिलाया जायेगा, यह खिलाया जायगा। अब वह बेचारा वहाँ जाकर सचमुच पावे तो ठीक है, नहीं तो आप वाणी से कितना भी परोस दीजिए, उसे सन्तुष्टि नहीं होगी। लेकिन वह तो शास्त्र में लिखा है। अब जिसको मिलेगा, वह कहेगा कि हाँ ठीक है। इसलिए शास्त्र का एक पक्ष वही है कि आप जो करेंगे, वही आपको मिलेगा और कई गुना होकर मिलेगा। दृष्टान्त दिखाई देता है कि जब आप खेत में बीज डालते हैं, तो वह कई गुना होकर नहीं मिलता क्या? यह बात तो तर्कसंगत है ही। पर दूसरा पक्ष यह कहता है कि महाराज मनु शास्त्रज्ञ थे, महान व्यक्ति थे, उनको लगा कि धर्म के द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है, वह शाश्वत नहीं होता। स्वर्ग में व्यक्ति चला जायेगा, देवता के रूप में भोगों को भोगेगा, लेकिन जब उसके पुण्य समाप्त होंगे, तो फिर मृत्युलोक में आ जायेगा – **क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति।** तो जितने भोग प्राप्त भी होंगे, वे भोग भी तो अन्त में छिन जायेंगे। एक व्यंग्य गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका में भी किया।

उनसे कहा गया कि महाराज स्वर्ग में कोई रोग होता है कि नहीं? सुनते हैं कि स्वर्ग में कभी कोई बूढ़ा नहीं होता, कोई रोग नहीं होता। गोस्वामीजी ने कहा कि हाँ, ये रोग तो नहीं होते, पर एक ऐसा रोग स्वर्ग में होता है, जिसकी दवा है ही नहीं और स्वर्ग में तो बिल्कुल ही दवा नहीं है। वह क्या है? गोस्वामीजी ने कहा – **स्वर्ग मिटत न सावत** – यह ईर्ष्या का रोग स्वर्ग में भी विद्यमान है। ईर्ष्या का रोग यहाँ तो है ही, स्वर्ग में भी है। यहाँ आप अगर किसी से ईर्ष्या करें, तो प्रयत्न करके उन्नति कीजिए। पर वहाँ? स्वर्ग में ईर्ष्या क्यों है? आप जितना पुण्य करके गये, उतना ऊँचा आपको सिंहासन मिला। जो आपसे डेढ़ा पुण्य करके गया, उसको आपसे डेढ़ा ऊँचा सिंहासन मिला, दूना किया, तो उसको और ऊँचा आसन मिला। जब वह अपने बगलवाले को देखता है कि अरे, इसकी सेवा में तो बहुत-सी अप्सराएँ हैं और बड़ा सुख है, यह तो मुझसे अधिक आनन्द ले रहा है, तो ईर्ष्या हो जाती है। पर स्वर्ग में समस्या यह है कि साधना तो हो नहीं सकती, ईर्ष्या को मिटाने का कोई उपाय नहीं है। उसका परिणाम? जब स्वर्ग में रहें, तब भी ईर्ष्या।

महाभारत में वर्णन आता है महाराज युधिष्ठिर जब स्वर्ग में गये और उन्होंने अपने सिंहासन के बगल में दुर्योधन को भी सिंहासन पर बैठे देखा, तो बड़े क्षुब्ध हुए। बड़ा बुरा लग गया। जिससे जीवन भर शत्रुता रही, जिसने इतना कष्ट दिया, वह मेरी बराबरी में बैठा हुआ है? आश्चर्य उन्हें तब हुआ, जब देखा कि उनके जो प्रिय भाई हैं, वे कोई दिखाई नहीं दे रहे हैं।

उसकी एक व्याख्या है। वह अपने ढंग की व्याख्या है। उन्होंने कहा कि तुम चिन्ता मत करो, तुम यहाँ पर भी, स्वर्ग में भी वही भाव लेकर मत बैठो कि दुर्योधन मेरा शत्रु है। इसको छोड़ो। दूसरी बात यह है कि किसी ने अच्छा किया है, तो उसे अच्छा फल भी प्राप्त होता है, बुरा कर्म किया है तो बुरा फल भी प्राप्त होता है। दुर्योधन ने जो सत्कर्म किया है, उसका फल उसे मिल रहा है। जब उसका पुण्य समाप्त हो जायेगा, तो वह वहाँ से च्युत हो जायेगा। तुम्हारे भाइयों के जीवन में यदि पाप आदि हुए हैं, तो उसके नष्ट हो जाने पर वे पुन: स्वर्ग में आ जाएँगे। पर महाभारत के इस कथा का अर्थ तो यही है कि ये समस्याएँ स्वर्ग के साथ जुड़ी हुई हैं। तब? जो विचारवान हैं, वे विचार करते हैं। जैसाकि भगवान राम ने अपने पुरवासियों को उपदेश देते हुए कहा –

एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।। ७/४३/१

स्वर्ग भी तुच्छ है और अन्त में दुख देनेवाला है। तब धर्म का दूसरा फल क्या है? भगवान श्रीराम ने लक्ष्मणजी को उपदेश दिया, उसमें वह सूत्र दिया। उन्होंने कहा कि धर्म का पालन करने से अगर भोग प्राप्त हो, तो वह साधारण फल है। पर धर्म करते-करते क्या होना चाहिए? भगवान राम का वह वाक्य जो उन्होंने लक्ष्मणजी से कहा –

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।। ३/१५/१

लक्ष्मण, धर्म का पालन करने से जब वैराग्य होगा और वैराग्य के साथ योग की प्रतिष्ठा होगी, तब व्यक्ति ज्ञानवान होकर मुक्त हो जायेगा। अब मनुजी ने अनुभव किया कि संसार के सारे सुख-भोग हमें प्राप्त हैं और सत्कर्म के द्वारा वे हमें स्वर्ग में भी प्राप्त होंगे, यह लिखा हुआ है। लेकिन –

होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु।।
१/१४२/०

उनका यह संस्कार है, वे विवेक से विचार करके अपनी कमी देख लेते हैं। मुझे तो वैराग्य नहीं हुआ और तब उन्होंने विचार का आश्रय लिया, अच्छा वैराग्य नहीं हुआ, तो हम त्याग करेंगे। वैराग्य माने बुराइयों का मन से छूट जाना। त्याग माने, मन से भले न छूटा हो, पर बुद्धि से हम उसको छोड़ते हैं। तो उन्होंने निर्णय किया कि वैराग्य तो है नहीं, पर वैराग्य नहीं है, तो क्या हुआ? हम त्याग करते हैं। हम त्याग करके भगवान को पाने का प्रयत्न करेंगे। उन्होंने सफलता पाई।

कल की कथा में आप सुन ही चुके हैं कि भगवान राम से जब उन्होंने वरदान भी माँगा, तो राग वाला ही माँगा, आप मेरे पुत्र बनिए और महारानी सतरूपा ने विवेक माँगा –

जो बरु नाथ चतुर नृप मागा।
सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा।
प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई।
जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई।। १/१४९/४-५

इसलिये

जे निज भगत नाथ तव अहहीं।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं।। १/१४९/८
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु।।
१/१५०/०

पर आप कल सुन चुके हैं, कि महाराज मनु ने कह दिया कि मुझे विवेक नहीं चाहिए। अब आप उस पर ध्यान दें। राग की पराकाष्ठा है। उस पराकाष्ठा का परिणाम यह होता है कि भगवान उनका पुत्र बन जाना स्वीकार कर लेते हैं। दशरथ जी ने जो आनन्द पाया, वात्सल्य का जो सुख पाया, वह तो अद्‌भुत तथा अनोखा था ! किन्तु भगवान ने निर्णय किया कि भले ही मनु ने मुझसे भक्ति माँगी और विवेक का निषेध किया, पर विवेक और वैराग्य भी आवश्यक है। वे दशरथजी के रूप में पुत्र-प्रेम में भूले हुए हैं, भक्ति तो है, पर विवेक और वैराग्य भी आवश्यक है। श्रीमद्‌भागवत में भी यह संकेत सूत्र है कि भक्ति देवी वृन्दावन में पहुँचकर युवा हो गईं। ज्ञान, भक्ति और वैराग्य, तीनों वृद्ध हो गये थे। लेकिन वृन्दावन में भक्ति युवा हो गई, पर ज्ञान और वैराग्य बूढ़े हो गये। उसका स्पष्टीकरण किया गया कि वहाँ ज्ञान, वैराग्य की कोई पूछ नहीं थी। वहाँ केवल भक्ति का ही आनन्द चाहिए, ऐसी भावना थी, इसलिए दोनों बूढ़े रह गये। लेकिन श्रीमद्‌भागवत सप्ताह के श्रवण के द्वारा भक्ति देवी तो युवा हो ही गई, ज्ञान और वैराग्य भी युवा हो गये। श्रीमद्‌भागवत और श्रीरामचरितमानस का सिद्धान्त एक ही है कि ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, तीनों की समग्रता जब तक जीवन में नहीं होगी, तब तक व्यक्ति कृतकृत्य नहीं होगा। अब महाराज दशरथ के जीवन में वैराग्य को लाना आवश्यक है। मैं आपसे आशा करता हूँ कि आप एकाग्रता से सुन रहे होंगे। तभी आप बड़े आनन्द से समझ सकेंगे और वह आपको बिल्कुल बुद्धिगम्य लगेगा। महाराज दशरथ ने क्या नहीं पा लिया? जो चाहा वही मिला, सब कुछ उपलब्ध हो गया, लेकिन अयोध्याकाण्ड एक उलटी दिशा में दिखाई दे रहा है। अब सारी इच्छाएँ पूरी होने के बाद महाराज दशरथ के मन में एक ही इच्छा शेष रह गई और वही उन्होंने गुरु वशिष्ठ से निवेदन किया कि महाराज अब मेरी एक यही इच्छा है कि राम को मैं सिंहासन पर बैठा दूँ। तब?

पुनि न सोच तन रहउ कि जाऊ। २/३/५

शरीर का तो क्या है, रहता है और नहीं रहता है, पर मेरी आकांक्षा है। पर महाराज श्री दशरथ की सारी इच्छाएँ पूरी होने पर भी यह अन्तिम इच्छा भगवान ने पूरी नहीं की। उलटा हो गया। राजसिंहासन पर बैठे हुए श्रीराम को तो देख ही नहीं पाए, उलटा श्रीराम के वन जाने के हेतु बन गये। प्रभु ने यह उलटी लीला क्यों कर दी? उसका तात्पर्य यह है कि प्रभु ने सोचा कि महाराज दशरथ ने मुझे पुत्र मानकर पुत्र का आनन्द, वात्सल्य का रस तो ले लिया, पर वैराग्य की आवश्यकता है। ज्ञान तो उन्होंने लंका में विजय के बाद दिया – **ताहि पितहि दीन्हेउ दृढ़ ज्ञाना।**

भगवान की यह जो लीला थी, वह पिता जी के हृदय में वैराग्य उदय करने की थी। वैराग्य उदय करने के लिये कैसी लीला थी ! देखिए, जीवन में जब राग और अनुकूलता होती है, तब वैराग्य कैसे होगा? आपको सभी लोग स्नेह करें, सम्मान करें, आपकी बात पत्नी, पुत्री, मित्र भी मानें,

शेष भाग पृष्ठ १६५ पर

स्वामी विवेकानन्द-स्तवराजः

कुशाग्र अनिकेत, न्यूयार्क, अमेरिका

नमोऽहम्पदरूपाय ब्रह्मशब्दोदितार्चिषे।
अस्मिनादसमाख्यातमहावाक्याय योगिने।।१।।

– 'अहम्' पद के स्वरूप, 'ब्रह्म' शब्द से उदित होनेवाली ज्योतिवाले और 'अस्मि' के नाद से समाख्यात उन महावाक्य (महद् वाक्यं यस्य सः) योगी को नमस्कार है।

नमस्तत्पदवाच्याय त्वम्पदोदाहृतात्मने।
असिक्रियापदाख्यात-सत्तामात्रपरत्विषे।।२।।

– उन 'तत्' पद के द्वारा वाच्य, 'त्वम्' पद के द्वारा अभिप्रेत स्वरूपवाले, और 'असि' क्रिया-पद के द्वारा आख्यात सत्ता-मात्र और परम ज्योति को नमस्कार है।

मायाभुजङ्गपाशस्थ जगद्व्यापारसाक्षिणे।
चिदाकाशादधोयातवैनतेयाय वै नमः।।३।।

– माया रूपी सर्प के पाश में स्थित जगत् के व्यापार को देखनेवाले और चित् स्वरूप आकाश से नीचे उतर कर आए हुए उन गरुड रूपी देवता को नमस्कार है।

संसारसैकताप्लाव-चिदानन्दाब्धिवीचये।
नमस्तुङ्गातिवेगाय गम्भीरस्वनघोषिणे।।४।।

– संसार-रूपी बालु-राशि से परिपूर्ण तट को आप्लावित करनेवाले चिदानन्द-रूपी समुद्र के उत्तुंग, वेगवान् और गम्भीर स्वर में उद्घोष करनेवाले तरंग को नमस्कार है।

नमो नैराश्यनैरस्यनैःसत्त्व्याधिविनाशिने।
नैःश्रेयसप्रतिष्ठाननागराय महात्मने।।५।।

– निराशा, नीरसता और निर्जीवता जैसे रोगों का उन्मूलन करनेवाले, और नैःश्रेयस अर्थात् मोक्ष रूपी नगर के निवासी उन महात्मा को नमस्कार है।

नमः सख्ये सुपर्णाय समानतरुवासिने।
फलभोक्तृत्वहीनाय साक्षिभावस्थपक्षिणे।६।।

– उस साक्षी-भाव में स्थित पक्षी को नमस्कार है, जो मेरा सखा है, जिसके सुन्दर पंख हैं, जो मेरे साथ समान वृक्ष पर रहता है और जो फल के भोक्तृत्व से मुक्त है।

प्रपञ्चपादपोच्छेदप्रवीणपरपर्शवे।
अप्रमेयप्रहाराय प्रज्ञाधाराय वै नमः।।७।।

– अप्रमेय प्रहार और प्रज्ञा-रूपी धारवाले, प्रपञ्च-रूपी वृक्ष के उच्छेद में प्रवीण उस सर्वोच्च परशु को नमस्कार है।

स्वर्णतन्त्रीकराघर्षपरिश्रान्ता सरस्वती।
वक्त्रतन्त्रीमगृहणीत यस्य तस्मै नमो नमः।।८।।

– स्वर्ण-निर्मित वीणा के तारों को हाथ से घिसने के कारण परिश्रान्त हुई सरस्वती ने जिनकी मुख-रूपी वीणा के तार को पकड़ लिया, उनको बार-बार नमस्कार है।

लोकोऽयं याचको भूत्वा यस्य दानमवाप्तवान्।
तस्मै निरीहवेषाय नमो निःस्वाय भिक्षवे।।९।।

– यह संसार भी याचक बनकर जिनके अवदान को ग्रहण कर सका, उन निरीह वेषवाले, निःस्वार्थ भिक्षुक को नमस्कार है।

आसृष्टिकल्पपर्यन्तनिखिलश्रुतिसेतवे।
नमो राष्ट्रसमुद्धारहेतवे धर्मकेतवे।।१०।।

– सृष्टि के आदि से प्रलय पर्यन्त सभी श्रुतियों के सेतु

के रूप में विद्यमान, राष्ट्र के पुनरुद्धार के कारण और धर्म के ध्वजधारी को नमस्कार है।

योऽभिजानाति न ब्रूते यो ब्रूते नावबोधति।
इत्थं द्वैधनिषेधाय नमः प्रत्यक्षदेशिने।।११।।

– ''जो (इस आत्म-तत्त्व को) जानता है, वह बोलता नहीं, जो बोलता है, वह जानता नहीं।'' – इस द्वैध का निषेध करने के लिए प्रत्यक्ष उपदेश करनेवाले को नमस्कार है।

न पादपतनं भक्तिर्देवस्याप्यपरीक्षणात्।
इत्थं न्यायानुसन्धात्रे नमो भक्ताधिमौलये।।१२।।

– ''किसी देवता के भी चरणों में बिना परीक्षण किए गिर जाने का नाम भक्ति नहीं है'' – इस न्याय का अनुसन्धान करनेवाले भक्त-श्रेष्ठ को नमस्कार है।

आङ्ग्लबाङ्गलामयी वाणी संस्कृत-प्राकृतान्विता।
गद्यपद्यमयी यस्य तस्मै मेधाविने नमः।।१३।।

– जिनकी वाणी अँग्रेजी और बांगला, संस्कृत व प्राकृत तथा गद्य और पद्य से परिपूर्ण थी, उन मेधावी पुरुष को नमस्कार है।

आत्मानं कन्दुकीकृत्य क्रीडकीकृत्य चापरान्।
भ्रमन्तः संश्रिता येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।१४।।

– अपने आप को गेंद और अन्य लोगों को खिलाड़ी बनाकर भटकनेवालों (दासता से बँधे देशवासियों) को जिन्होंने आश्रय दे दिया, उन गुरु को नमस्कार है।

नमो निर्वाणमार्गेण जगत्कल्याणकारिणे।
दर्शनज्ञानसंयुक्तकर्मयोगोपदेशिने।।१५।।

– निवार्ण-मार्ग के द्वारा जगत् के कल्याणकर्ता और दर्शन व ज्ञान से संयुक्त कर्मयोग के उपदेशक को नमस्कार है।

विश्वातपघ्नपीयूष-शीतशीकरभानवे।
आत्मदीपप्रभादीप्त-निर्वातशिखिने नमः।।१६।।

– संसार के आतप को हरनेवाले अमृत के शीतल जल-कणों के समान किरणोंवाले और आत्म-दीप की प्रभा से दीपित वायु शून्य (निष्कम्प) शिखावाले को नमस्कार है।

नमो वाङ्मनसातीत-परात्मपददर्शिने।
समस्तविषयातीत-विविक्तपथगामिने।।१७।।

– वाणी और मन से परे परमात्म-तत्त्व के द्रष्टा और समस्त विषयों से परे निर्जन पथ के यात्री को नमस्कार है।

इदं ब्रह्मेत्यभिज्ञान-निर्दिष्टाखिलबोधिने।
नमः सर्वपदाभेदरूपिणे भवरूपिणे।।१८।।

– 'यह ब्रह्म है' इसी अभिज्ञान द्वारा निर्दिष्ट सम्पूर्ण जगत् को पहचाननेवाले, 'सर्व' पद के द्वारा अभिप्रेत अभेद-स्वरूपवाले तथा स्वयं जगत्-स्वरूप योगी को नमस्कार है।

नमो राष्ट्रमनःसंस्थशूलशोधन-कर्मणे।
अन्तःस्थचेतना-शल्यचिकित्सा-विधिवेदिने।।१९।।

– राष्ट्र के शरीर में छिपे शूल को निकालने का काम करनेवाले और आन्तरिक चेतना की शल्य चिकित्सा की विधि को जाननेवाले को नमस्कार है।

मोहस्वप्नान्तकालोत्थ-प्रबोधस्वस्थ-चेतसे।
नमो निगमवीथिस्थ-नैगमाय यशस्विने।।२०।।

– मोह रूपी स्वप्न के अन्त के समय उदित हुई प्रबोध रूपी स्वस्थ बुद्धिवाले तथा निगम के मार्ग पर स्थित यशस्वी नैगम (वैदिक मतावलम्बी) को नमस्कार है।

जगन्नाटकपात्रत्वमनुष्ठाय स्वलीलया।
नैपथ्यमागतो मञ्चाद् यस्तस्मै स्वामिने नमः।।२१।।

– जिन स्वामी ने अपनी लीला से संसार-रूपी नाटक में पात्र का निर्वाह कर मंच से नेपथ्य को प्रस्थान किया, उनको नमस्कार है।

वेदान्तसत्यसङ्कल्प-सूर्योदयनिराकृत।
स्वदेशप्राङ्गणव्याप्त-मायान्धतमसे नमः।।२२।।

– जिन्होंने वेदान्त के सत्यसंकल्प के सूर्योदय के माध्यम से हमारे देश के प्रांगण में व्याप्त माया के अन्धकार को दूर किया, उनको नमस्कार है।

विवेकाम्बुधिर्नित्यमानन्दरूपो
यतीन्द्रो नरेन्द्रो नृणां सिंहभूतः।
शिकागोसभासीन उद्दाममेधः
सदा पूजितो राजते विश्वमञ्चे।।२३।।

– विवेक के समुद्र, सदा आनन्दस्वरूप, योगिराज नरेन्द्र मनुष्यों में सिंह के समान हैं। वे शिकागो-सभा में प्रखर मेधा-युक्त सदैव पूजनीय विश्वमंच पर दीप्तिमान् हो रहे हैं।

इत्ययं भाषितः श्रीमद्विवेकानन्दयोगिनः।
श्रीकुशाग्रानिकेतेन नमस्कारात्मकः स्तवः।।२४।।

– इस प्रकार श्रीमद्-विवेकानन्द योगी के प्रति समर्पित यह नमस्कारात्मक स्तव श्री कुशाग्र अनिकेत द्वारा प्रस्तुत किया गया। ○○○

साँप ! साँप !

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनकी कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

'हरि ! शिबू !' नरेन ने हाथ हिलाते हुए अपने साथियों को तुरन्त बुलाया। लड़के अभी नरेन के घर के बड़े आँगन में आये थे। 'आज हम क्या खेल रहे हैं?' उन्होंने उसकी ओर दौड़ते हुए पूछा। उत्तर में नरेन उन्हें सीढ़ियों से ले जाते हुए एक बड़े कमरे में ले गया। उसने कहा,'यह एक नया खेल है।' जैसे ही उसने दरवाजा बन्द किया, उसकी बड़ी, भूरी आँखें चमक उठीं।

कमरे में नमी थी और सुनसान था। बड़ी कठिनाई से एक खिड़की से कुछ धूप आ रही थी। हरि ने दीवारों पर छाया को देखते हुए थोड़ी काँपती आवाज में कहा – 'यह डरावना है'। नरेन ने कहा, 'यह हमारे नए खेल के लिए एकदम सही है,'। वह है – 'ध्यान का खेल...' 'क्या !'

नरेन नंगे फर्श पर बैठकर अपने पैरों को मोड़कर पालथी मार लिया। 'मेरी दीदी कहती है कि अगर तुम अपनी आँखें बन्द कर लेते हो और लम्बे समय तक चुपचाप बैठे रहते हो, तो तुम्हारे सिर के बाल बढ़कर धरती को छूने लगेंगे।' अपने आश्चर्यचकित मित्रों को उसने बताया। 'मैं देखना चाहता हूँ कि क्या यह सच है...'

हरि और शिबू नए खेल से उत्साहित होकर बैठ गए।

तीनों लड़कों ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और पुराने समय के ऋषियों की तरह अपने हाथों को अपनी गोद में रख लिया। पाँच मिनट के बाद शिबू ने अपने मित्रों की ओर देखा। नरेन और हरि बहुत शान्त थे, इसलिए उसने एक बार फिर अपनी आँखें बन्द कर लीं। बड़ी कठिनाई से पाँच मिनट बीते थे, जब हरि ने अपनी बाँह खुजलाते हुए अपनी आँखें खोलीं। 'मच्छर,' उसने शिकायत की। 'हश!' शिबू ने डाँटा। 'चुप रह।'

बहुत शीघ्र दोनों लड़कों को कठिनाई होने लगी। वे व्यग्र हो गये। कठोर फर्श पर अपनी शारीरिक अवस्था बार-बार बदलते रहे, लेकिन नरेन एक मूर्ति की तरह बना रहा। उसका चेहरा शान्त और चमक रहा था। अचानक हरि फुसफुसाया, ''वह क्या है?'' ''परेशान मत करो,'' शिबू बुदबुदाया। ''मैं सच कह रहा हूँ... देखो ...'' शिबू की आँखें खुल गईं, ''क्या हुआ, तुम्हारे बाल उगने लगे हैं?'' लेकिन, जब उसने हरि की इशारा करते हुए उँगली की ओर देखा, तो उसकी आँखें डर से खुली की खुली रह गईं। ''यह साँप है'' वह कूदकर खड़ा हो गया, चिल्लाया और टकटकी लगाकर काली रस्सी को देखने लगा, जो उसकी ओर फिसलती, रेंगती हुई आ रही थी।

'उठो!' अपने मित्र को खींचते हुए लड़के चिल्लाए, लेकिन नरेन नहीं हिला। उसका शरीर चट्टान की तरह अटल था। शिबू चिल्लाया, ''हम क्या करें?'' अपनी ओर आनेवाले साँप पर उसकी घबराई हुई आखें टिकी हुई थीं। ''चलो सहायता माँगते हैं ...'' और हरि सीढ़ियों पर जाने के लिए छलाँग लगा दिया। शिबू ठीक उसके पीछे-पीछे चल रहा था। वे नरेन के माता-पिता और बहनों को लेकर शीघ्र वापस आ गए।

'रुक जाओ,' नरेन के पिता ने दरवाजे के थोड़ा अन्दर खड़े होकर आज्ञा दी। सभी हाँफने लगे। अपना फन फैलाकर और जीभ लपलपाते हुए साँप ने नरेन पर फुफकारा। उसकी माँ ने रोते हुए कहा, 'मुझे अपने बच्चे के पास जाने दो।' लेकिन विश्वनाथ दत्त ने नहीं में सिर हिलाते हुये कहा, ''यह एक कोबरा है ... हमें यहीं रहना चाहिए, नहीं तो वह डर कर हमारे बच्चे को काट सकता है ...''

वे लोग दरवाजे पर ही रुके रहे, उनकी दृष्टि नरेन और साँप पर टिकी रही। 'शिव, शिव' उसकी माँ ने प्रार्थना की, उनकी आँखें आँसुओं से भींगी हुई थीं। अचानक कोबरा ने अपना सिर नीचे किया और दीवार के एक छेद से रेंगकर बाहर निकल गया। सभी ने राहत की साँस ली और नरेन के पास दौड़े। उसे छूने से डरते हुए। कुछ देर बाद उसका शरीर शिथिल हुआ। उसने उत्सुकता और आश्चर्य से देखते हुए अपनी आँखें खोलीं। ''क्या हुआ? आप सब यहाँ कैसे?''

हरि ने कहा, 'यहाँ एक साँप था, नरेन ! नरेन ने सिर हिलाया। 'वह तुम पर हमला करनेवाला था... तुमने हमारी चीखें नहीं सुनी?' उसकी माँ ने उसकी कोमल ठुड्डी को सहलाया। ''तुम क्या कर रहे थे मेरे लाल?'' नरेन ने मुसकुराते हुये कहा, 'माँ, मैं ध्यान कर रहा था।' यह अद्भुत था ! मुझे बहुत खुशी हुई ! केवल ...'' उसने अपना सिर छुआ और अपनी बहनों पर नाराज होकर कहा, 'मेरे बाल बिलकुल नहीं बढ़े हैं ...।''

* * *

ध्यान का अर्थ है – मन को अन्तर्मुखी करना, अपने अन्दर की ओर मोड़ लेना। मन में सभी विचार-तरंग रुक जाते हैं और संसार थम-सा जाता है। तुम्हारी चेतना का विस्तार होता है। हर बार जब तुम ध्यान करोगे, तो तुम अपनी उन्नति को बनाए रखोगे। थोड़ा और परिश्रम करो, अधिक से अधिक करो, तब ध्यान स्वाभाविक हो जायेगा। तुम शरीर या कुछ और अनुभव नहीं कर पाओगे। जब तुम एक घण्टे के बाद इससे बाहर आते हो, तो तुम अपने जीवन में अब तक का सबसे अधिक शान्ति का अनुभव करते हो। यही एकमात्र पद्धति है, जिससे तुम कभी भी अपने शरीर को विश्राम देते हो। गहरी से गहरी नींद भी तुम्हें इतना विश्राम नहीं देगी। गहरी नींद में भी मन उछलता रहता है। ध्यान में बस कुछ ही मिनट में तुम्हारा मस्तिष्क लगभग रुक जाता है। बस थोड़ी-सी जीवन-शक्ति बनी रहती है। तुम शरीर को भूल जाते हो। तुमको टुकड़े-टुकड़े काट डालने पर भी तुमको इसका बिलकुल भी अनुभव नहीं होता। तुमको इसमें इतना आनन्द अनुभव होता है। तुम इतने हल्के हो जाते हो। यह पूर्ण विश्राम हमें ध्यान में मिलता है।

– स्वामी विवेकानन्द

पृष्ठ १६१ का शेष भाग

तो आपका राग तो बढ़ेगा ही। आनन्द ही आनन्द है। वस्तुत: जीवन में वैराग्य दो तरह से आता है। एक तो विचार से आता है। दूसरा विचार से भी नहीं आयेगा, जब तक उसका प्रत्यक्ष अनुभव न हो। यह तब होता है, जब हम जीवन में प्रतिकूलता से भरे हुए हैं। प्रतिकूलता जीवन में आ जाये, तब स्वाभाविक रूप से व्यक्ति के जीवन में वैराग्य का उदय होता है। यह संकेत कितना सुन्दर है ! अनेक गुणों से सम्पन्न होते हुए भी महाराज दशरथ में दो बातें थीं। एक तो महारानी कैकेयी के सौन्दर्य के प्रति उनमें आसक्ति थी, उनका आकर्षण था। आप पूरे अयोध्याकाण्ड पर विचार कीजिए, सारी समस्याओं का मूल अहंता और ममता है, मैं और मेरा है। यह मैं और मेरा का खेल ही तो सामने आया। क्या?

(क्रमश:)

अतिथि और आतिथेय

राजकुमार गुप्ता, वृन्दावन

सनातन धर्म-ग्रन्थों में मानव-जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है। मनुष्य की पूर्ण आयु को सौ वर्ष मानकर जन्म से २५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य आश्रम, २५ से ५० वर्ष तक गृहस्थ आश्रम, ५० से ७५ वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम तथा ७५ से १०० वर्ष तक (मृत्यु पर्यन्त) संन्यास आश्रम निश्चित किया गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या-अध्ययन करके अपने को योग्य बनाना है। गृहस्थाश्रम में आजीविका का कार्य करते हुए विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करना, उन्हें योग्य बनाना, उनके विवाह इत्यादि करना है। वानप्रस्थ आश्रम में कठोर नियमों का पालन करते हुए स्वयं को संन्यास आश्रम के लिये तैयार करना है। तत्पश्चात् संन्यासी होकर मोक्ष-मार्ग का पथिक बनना है। यह सनातनी हिन्दुओं की जीवनचर्या है।

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी एवं संन्यासी अपनी जीविका के लिए कोई कार्य नहीं करते। उनके संरक्षण और पोषण का दायित्व गृहस्थों का ही है। अपने इस दायित्व के निर्वहण में गृहस्थों को जीविकोपार्जन करना, यज्ञ करना, दान इत्यादि देना तथा अन्य तीनों आश्रमियों का पोषण करना आवश्यक है।

विभिन्न कार्यकलापों में गृहस्थ आश्रम में प्रतिदिन हिंसा होती ही रहती है। उसके निवारणार्थ गृहस्थों के लिए पञ्च यज्ञों का विधान किया गया है। मनुस्मृति में गृहस्थी में हिंसा के पाँच स्थान बताये गये हैं –

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्।।

मनुस्मृति, अध्याय ३, श्लोक - ६८

चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली तथा पानी का घड़ा ये पाँच हिंसा के स्थान हैं। इनको प्रयोग में लाते हुए गृहस्थ हिंसा के पापों से बँध जाता है।

हिंसा दोषों की निवत्ति के लिए गृहस्थों के लिये पाँच महायज्ञों का विधान किया गया है वे हैं –

अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।

मनुस्मृति, अध्याय ३, श्लोक ७०

पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपसना करना ब्रह्म-यज्ञ कहलाता है। माता-पिता, गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा भोजनादि की व्यवस्था करना पितृ यज्ञ कहलाता है। अग्निहोत्र (हवन) करना, देव यज्ञ कहलाता है। पशु-पक्षियों, कुत्तों आदि को भोजन देना भूत यज्ञ कहलाता है।

अतिथियों को भोजन और सत्कार देना नृयज्ञ या अतिथि यज्ञ कहलाता है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि गृहस्थों को ये पाँचों यज्ञ प्रतिदिन करने चाहिए। किन्तु यहाँ पर हम केवल अतिथि यज्ञ पर ही विचार करेंगे। सबसे पहले अतिथि क्या होता है, अतिथि कौन हो सकता है और अतिथि के लक्षण क्या होने चाहिए, इन बातों पर विचार करेंगे। मनुस्मृति में कहा है –

एक रात्रं तु निवसन्नतिथिब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्य हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते।।

मनुस्मृति, अध्याय ३, श्लोक १०२

जो व्यक्ति एक रात्रि तक ही पराये घर में रहे तथा जिसका आना-जाना अनिश्चित हो, वही अतिथि यज्ञ का अधिकारी है। वह विद्वान हो तथा उसका आना-जाना और ठहरना अनिश्चित होना चाहिए, चाहे वह किसी भी वर्ण का हो। ऐसे अतिथि की सेवा करना एक श्रेष्ठ कर्म है। मनुस्मृति में आगे कहा गया है। अन्य गृहस्थ जिनके घर में पत्नी से पाकाग्नि प्रज्वलित रहती हो, उसी गाँव के रहनेवाले हों, तो वे अतिथि नहीं हो सकते। अपने सम्बन्धी, मित्र इत्यादि भी अतिथि यज्ञ के पात्र नहीं हैं। क्योंकि वे हमारे यहाँ आते हैं, तो सम्बन्ध के कारण स्वागत-सत्कार पाने के अधिकारी हैं। जब हम उनके घर जायेंगे, तो वे भी हमारा स्वागत-सत्कार करेंगे। यह परस्पर अन्योन्य भाव से किया गया स्वागत-सत्कार अतिथि यज्ञ नहीं है।

गृहस्थाश्रमी होकर जो पराये घर में भोजनादि की इच्छा करते हैं, वे बुद्धिहीन मनुष्य प्रतिग्रह रूप पाप करके जन्मान्तर में अन्नादि दाताओं के पशु बनते हैं। क्योंकि अन्य से अन्न आदि का ग्रहण करना अतिथियों का काम है, गृहस्थों का नहीं।

आतिथेय के कर्तव्य

– गृहस्थ को सायंकाल, सूर्यास्त के बाद आये अतिथि को लौटाना नहीं चाहिये। चाहे वह समय पर आये अथवा असमय पर आये, उसे भोजन अवश्य कराये। यदि घर के सब लोग भोजन कर चुके हों, तो दुबारा भोजन पका कर अतिथि को भोजन कराये। दुबारा भोजन पकाने पर बलिर्वैश्य इत्यादि का विधान नहीं है। इस प्रकार अतिथि की सेवा करने से आयु, सौभाग्य और सुख की वृद्धि होती है।

यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि उत्तम अतिथि का उत्तम सत्कार, मध्यम का मध्यम और हीन अतिथि का हीनवत् सत्कार व व्यवहार करना चाहिए। परन्तु जो पाखण्डी, मिथ्या उपदेशक, वेदनिन्दक, वाममार्गी, अनीश्वरवादी, कुतर्की, शठ, दुराग्रही हो, तो उनसे दूर ही रहना चाहिए। यदि ऐसे व्यक्ति याचना इत्यादि के बहाने आयें, तो तुरन्त हाथ जोड़ लें, न उनसे वाद-विवाद करें, न उनका अपमान करें।

अथर्ववेद में अतिथि यज्ञ की विधि इस प्रकार बताई है –

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत। स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्यं तथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति।।२।।

अर्थववेद, १५/११/१/२

जब अकस्मात् कोई विद्वान व्रतधारी अतिथि गृहस्थों के पास आये, तो गृहस्थ उठकर उसे प्रेम से आसन दे। जब वह बैठ जाये, तब पूछे, हे व्रतधारी जी ! आप कहाँ रहते हैं? यह आपके लिये जल है, कृपया इसे ग्रहण कीजिए। हे व्रतचारी जी ! जो आपको प्रिय हो, वही होवे। जो आपकी इच्छा हो, वही बने। फिर उनसे सत्संग करे, उनसे सदुपदेश ग्रहण कर ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करे तथा उसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष-प्राप्ति का साधन बनाये। अपना जीवन तथा चाल-चलन तदनुसार बनाये। केवल कौतूहल अथवा कहने भर के लिए ही उपदेश न सुने।

तैत्तिरीयोपनिषद के शिक्षावल्ली एकादश अनुवाक में कहा गया है 'अतिथिदेवो भव', जिसका अर्थ है, साधक को ऐसा मानना चाहिए कि अतिथि ही देव हैं। हम अतिथि को देवता के समान समझने वाले बनें। वेदों के सम्बन्ध में एक बात अति प्रसिद्ध है कि वेद अपौरुषेय हैं। यानी कोई व्यक्ति केवल परिश्रम करके, अध्ययन करके वेदों का तात्पर्य नहीं समझ सकता। वेद का यथार्थ तात्पर्य साधना, मनन और निदिध्यासन करने पर हृदयंगम होता है। वेदों में बातों को घुमाकर कहा गया है। क्योंकि 'देवाः परोक्षप्रियाः' देवता परोक्षप्रिय होते हैं। उन्हें सीधी बातें कहना-सुनना अच्छा नहीं लगता।

वेदों के मन्त्रों में अपार ऊर्जा का भण्डार है। यदि वह शक्ति स्वार्थ-लोलुप और क्रूर पुरुष के हाथ में पड़ गई, तो उसका दुरुपयोग करके सृष्टि के संतुलन को खतरा उत्पन्न हो

जायेगा। जैसे परमाणु बम आतंकवादियों के हाथ लग जाये, तो वे निश्चय ही विनाश का ताण्डव मचा देंगे। यही बात वेद के तात्पर्य के बारे में समझनी चाहिए। जैसे-जैसे व्यक्ति साधन, भजन, गुरु-सेवन आदि के बाद वेद के तात्पर्य को हृदयंगम करता जायेगा, वैसे-वैसे उसके स्वार्थ, लोभ आदि दुर्गुण नष्ट होते जायेंगे। इसीलिए वेदों को अपौरुषेय बताया गया तथा वहाँ बातों को अपरोक्ष रूप से कहा गया है। उन्हें ठीक से समझने का उपाय साधन-मार्ग है, जो पहले हृदय को सरल, सात्त्विक और दयालु बनायेगा, तब वेदों का तात्पर्य प्रकट करेगा।

अब 'अतिथिदेवो भव' पर आते हैं। हम अतिथि को भगवान माननेवाले बनें। अतिथि और आतिथेय के सम्बन्ध में पुराणों में अगणित कथायें कहीं गई हैं। कुछ प्रसिद्ध कथायें संक्षेप में नीचे समालोचित की गई हैं –

१. मोरध्वज, भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन – एक बार भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर ब्राह्मण के वेष में राजा मोरध्वज के अतिथि हुए। ब्राह्मण श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन ब्रह्मचारी बने थे। वे एक सिंह को साथ ले गये थे। श्रीकृष्ण ने राजा मोरध्वज के सामने अजीब सी शर्त रखी कि

हमारा सिंह मानव मांस ही भक्षण करता है। तुम अपने पुत्र का मांस इसे खिलाओ। अतिथि-धर्म निर्वाह के लिये राजा ने अपने पुत्र का मांस सिंह को खिलाया। बाद में भगवान ने राजा के पुत्र को जीवित कर दिया।

पुराणों में भी देवा: परोक्षप्रिया: का सिद्धान्त लागू होता है। इस घटना का सीधा स्वरूप कुछ इस प्रकार हो सकता है – राजा मोरध्वज के राज्य में सिंह आदि हिंसक पशु इतने अधिक बढ़ गये कि जंगलों में ऋषि-मुनियों का रहकर भजन करना कठिन हो गया। ऋषियों ने राजा से अपने पुत्र को भेजकर इस समस्या का समाधान करने की प्रार्थना की। राजपुत्र सिंह आदि पशुओं से लड़ते हुए घायल और बेहोश हो गया। ऋषियों ने उसकी सेवा-शुश्रूषा करके स्वस्थ कर दिया। इसी बात को पुराण में राजपुत्र का मांस सिंह द्वारा भक्षण करने के रूप में कह दिया। राजा ने अपने पुत्र को प्रसन्नता से ही सिंह आदि का निवारण करने को भेजा था।

२. त्रिदेवों द्वारा सती अनुसूया के सतीत्व की परीक्षा – अतिथि सत्कार के सम्बन्ध में सती अनुसूया की कथा अति प्रसिद्ध है। लोक साहित्य में इस कथा पर भजन इत्यादि बने हुए हैं। संक्षेप में कथा इस प्रकार है –

ब्रह्मा, विष्णु और महेश अत्रि की पत्नी सती अनुसूया के सतीत्व की परीक्षा लेने के लिये जाते हैं। वे तीन ऋषियों का रूप बनाकर भिक्षा के लिए अत्रि के दरवाजे पर पहुँच कर 'भिक्षां देहि' की आवाज लगाते हैं। अत्रि-पत्नी अनुसूया जब भिक्षा लेकर आती हैं, तब ऋषि बने हुए त्रिदेव कहते

हैं कि आप हमें निर्वस्त्र होकर भोजन कराइये, अन्यथा हम बिना भिक्षा लिये ही लौट जायेंगे। अनुसूयाजी अपनी पतिव्रता की शक्ति से उन लोगों को नन्हा शिशु बना देती हैं और उन्हें अपना स्तनपान कराती हैं।

इस घटना को भी 'देवा: परोक्षप्रिया: के चश्मे से देखने पर घटना इस प्रकार है। अनुसूया व अत्रि ने अपने तप-बल से त्रिदेवों को पुत्र रूप में प्राप्त किया। पुराणों में इस घटना का वर्णन है। ब्रह्माजी अत्रि-पुत्र चन्द्रमा हुए। शिवजी – ऋषि दुर्वासा के रूप में भक्ति-पुत्र बने। विष्णु – योगी दत्तात्रेय के रूप में अनुसूया-अत्रि के पुत्र बने।

इस घटना से एक और प्रेरणा मिलती है। हर परिस्थिति में अपने विवेक और बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। सहसा क्रोधित होकर आपा नहीं खो देना चाहिए। बुद्धिमानी से हर समस्या का समाधान निकाला जा सकता है।

अतिथि-निष्ठा के कुछ दृष्टान्त

राजा रन्तिदेव की कथा – भरतवंशी राजा रन्तिदेव ने अकाल के समय दान करके अपनी सब सम्पत्ति दुखियों की सेवा में लगा दी। अब स्वयं भी आकाश-वृत्ति अपना कर कष्ट भोगने लगे। एक समय उन्हें ४८ दिनों तक खाने को कुछ नहीं मिला। ४९वें दिन कुछ घी, खीर, हलवा व जल मिला। राजा रन्तिदेव उस भोजन को अपने परिवार के सदस्यों के साथ भोजन करने बैठे ही थे कि एक ब्राह्मण अतिथि के रूप में आ गया। राजा ने ब्राह्मण अतिथि को भोजन करा दिया। शेष भोजन को पुत्र में बाँटकर वे भोजन करना प्रारम्भ करना ही चाहते थे कि एक शूद्र अतिथि आ गया। उसे भी श्रद्धापूर्वक भोजन करा दिया। पुन: भोजन करने बैठे, तो एक और अतिथि कुत्तों को लेकर आया और भोजन की याचना की। उनको भी आदरपूर्वक भोजन राजा ने करा दिया। अब केवल जल मात्र ही शेष था। राजा उस जल को पीना ही चाहते थे कि एक प्यासा चाण्डाल अतिथि काँपती आवाज में बोला – राजन्, मैं बहुत प्यासा हूँ। मुझे जल दीजिए। दया से द्रवित होकर राजा ने उसे जल पिला दिया। यद्यपि राजा स्वयं प्यास से मर रहे थे। परन्तु उन्होंने दयार्द्र होकर अतिथि को प्रसन्नतापूर्वक जल पिला दिया। वास्तव में ये त्रिदेवों द्वारा रन्तिदेव की अतिथि-निष्ठा की परीक्षा ली गई थी। कुछ देर बाद त्रिदेवों ने रन्तिदेव को दर्शन दिया। रन्तिदेव ने अपने मन को भगवान में तन्मय कर दिया। अब वे माया को पार कर चुके थे।

उपरोक्त कथा से यह शिक्षा मिलती है कि अतिथि-सेवा स्वयं कष्ट सहकर भी करनी चाहिए। उपरोक्त तीनों कथाओं में राजा मोरध्वज, अनुसूया और राजा रन्तिदेव के लिये अतिथि सचमुच देव यानी भगवान ही थे। जहाँ साक्षात् भगवान ही अतिथि हैं, ऐसे अतिथि और आतिथेय स्वयं धन्य हैं। हम

तो उन्हें प्रणाम ही कर सकते हैं। अब हम कुछ आधुनिक समय के अतिथि-आतिथेय कथाओं की समालोचना करते हैं।

दुर्गादास राठौड़ की अतिथि निष्ठा – दुर्गादास राठौड़ का नाम भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। उन्होंने मारवाड़ की सेना जसवन्त सिंह के उत्तराधिकारी कुँवर अजीत सिंह की रक्षा औरंगजेब से की थी। औरंगजेब ने अपने पुत्र को दुर्गादास को पकड़ने को भेजा। परन्तु दुर्गादास के शिष्ट व्यवहार के कारण औरंगजेब का पुत्र उनसे मिल गया और अपने पुत्र (औरंगजेब के पौत्र) बुलन्द अख्तर और पुत्री सफायतुन्निशा को दुर्गादास के संरक्षण में देकर ईरान चला गया। औरंगजेब अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी अपने पौत्र-पौत्री को दुर्गादास से प्राप्त न कर सका। तब उसने सन्धि का प्रस्ताव भेजा। तब दुर्गादास औरंगजेब की पौत्री को लेकर दिल्ली दरबार में उपस्थित हुए। औरंगजेब के पौत्र बुलन्द अख्तर को मारवाड़ में ही छिपा कर रख दिया था। क्योंकि औरंगजेब उन्हें शिवाजी महाराज की तरह धोखा न दे सके। जब औरंगजेब की १६ वर्ष की पौत्री को दुर्गादास राठौड़ ने औरंगजेब के सामने उपस्थित किया, तो औरंगजेब बोला – ''बेटी तुमने अपने जीवन को विधर्मी के संरक्षण में बिताया है। इसलिये तुम्हें हमारे धर्म का ज्ञान नहीं है। अब तुम्हें कुरान के पाठ में लग जाना चाहिए।'' सफायतुन्निशा ने कहा – अब्बा ! आप कैसी बातें करते हैं। सम्माननीय दुर्गादास जी ने मेरा पालन केवल अपनी पुत्री की तरह ही नहीं किया, बल्कि एक मुस्लिम महिला को मुझे कुरान की शिक्षा देने के लिये भी नियुक्त कर दिया था। मुझे पूरी कुरान कंठस्थ है। यह सुनकर औरंगजेब बोला – दुर्गादास आप देवता हैं। अतिथि का सम्मान करनेवाला खुदा का प्यारा होता है। औरंगजेब ने अजित सिंह को जोधपुर का महाराज स्वीकार कर लिया तथा दुर्गादास राठौड़ ने बुलन्द अख्तर को वापस दिल्ली भेज दिया। इस घटना से यह स्पष्ट है कि आतिथ्य की परम निष्ठा से दुर्गादास ने वह प्राप्त कर लिया, जिसे हजारों राजपूत वीरों की शहादत भी न पा सकी।

महाराणा प्रताप की राजकुमारी की अतिथि-निष्ठा – बात उस समय की है, जब राणा प्रताप अकबर की सेना से बचने के लिए वन-वन भटक रहे थे। उन्हें कभी गुफा में, कभी नाले में छिप कर समय काटना पड़ता था। खाने के लिये कन्द-मूल फलों का भी अभाव ही रहता था। कभी-कभी घास इत्यादि के बीजों की रोटियाँ बनाकर उन पर ही परिवार का निर्वाह होता था। एक बार महाराज के परिवार को कई दिनों तक लगातार भूखा रहना पड़ा। परिवार में उनकी रानी एवं उनका अबोध पुत्र और पुत्री थे। ऐसे संकट के समय एक बार जंगल में घास की रोटियाँ बनाई। उनमें से एक रोटी रानी ने बच्चों के लिए बचाकर रख ली। बाद में जब खाने की कोई व्यवस्था न हो सकी, तो राजा और रानी ने जल पीकर काम चला लिया और बच्चों को आधी रोटी दे दी। राजकुमार ने तो अपनी आधी रोटी तुरन्त खा ली। राजकुमारी ने यह सोच कर कि जब भइया भूख से रोये, तो उसे दे दूँगी। उसे बचाकर रख ली। संयोग से उसी समय एक अतिथि महाराजा के पास आये। राणाजी ने उन्हें पत्ते बिछाकर बैठाया, पीने को जल दिया। जल के साथ देने के लिये राणाजी के पास कुछ नहीं था। वे इधर-उधर देखने लगे। राजकुमारी बात समझ गई। वह आधी रोटी लेकर अतिथि के समक्ष रखते हुए बोली – देव, आप इसे ग्रहण करें। हमारे पास आज आपका सत्कार करने योग्य कुछ नहीं है। अतिथि ने वह रोटी खाई, जल पीया और चले गये। कुछ देर बाद राजकुमारी भूख से मूर्छित होकर गिर पड़ी और कभी न उठी। उस बालिका ने अतिथि को आधी रोटी ही नहीं दी थी, अपना जीवन ही उत्सर्ग कर दिया था।

कठोपनिषद् में यमराज की अतिथि-सेवा – कठोपनिषद में कथा आती है। वाजश्रवस ऋषि ने अपना सम्पूर्ण धन दान कर दिया। उनको नचिकेता नामक पुत्र था। नचिकेता ने देखा कि उसके पिता बूढ़ी, जर्जर, दूध न देने वाली गायों को दान में दे रहे हैं। ऐसी गायों के दान से दाता आनन्दरहित लोको में जाता है। इसलिए नचिकेता ने पिता से इसका विरोध किया। उसने कहा – पिताजी मैं भी आपका प्रिय धन हूँ, मुझे किसे दान में देंगे। दो बार ऐसा पूछने पर पिता कुछ न बोले, पर तीसरी बार पूछने पर वाजश्रवस ने कहा, 'तुझे मृत्यु को दूँगा।' पिता की आज्ञानुसार नचिकेता यमराज के घर जाता है। यमराज उस समय किसी कार्यवश घर से बाहर गये हुए थे। यमराज की अनुपस्थिति में नचिकेता बिना कुछ खाये-पिये यमराज के दरवाजे पर प्रतीक्षा करता रहा। कठोपनिषद में कहा गया है –

आशाप्रतीक्षे संङ्गतं सूनृतां च,
इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्।
एतद्-वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो,

यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे।।

कठोपनिषद्, प्रथम वल्ली मन्त्र-८

जिस छोटी बुद्धिवाले मनुष्य के घर में अतिथि बिना भोजन के रहता है, वह उसका सब कुछ हरण कर लेता है। उसकी जिन वस्तुओं की पाने की आशा होती है, उन्हें भी हर लेता है। जो वस्तुयें अनिश्चित हैं, जिनकी उसे प्रतीक्षा रहती है, उन्हें भी हर लेता है। उसके इष्टपूर्त कर्मों के फल को भी हर लेता है। उसके पुत्र-पशु सब व्यर्थ हो जाते हैं।

शंकराचार्य कठोपनिषद् के इस श्लोक के भाष्य में कहते हैं कि **तस्माद् अनुपेक्षणीयः सर्वा-अवस्थासु अपि अतिथिः इति अर्थः।** अतः तात्पर्य यह है कि किसी भी अवस्था में अतिथि का तिरस्कार नहीं किया जाना चाहिये।

जब तीन दिन बाद यमराज अपने घर आते हैं, तो नचिकेता को तीन वरदान देते हैं कि हे अतिथि ! तुम तीन दिन तक मेरे दरवाजे पर बिना भोजन-पानी के रहे। यही यमराज-नचिकेता का आख्यान महाभारत में अनुशासन पर्व के अध्याय ७१ में आया है। वहाँ कथा कुछ भिन्न प्रकार से कही गई है। यज्ञ की सामग्री जो नचिकेता के पिता ने नदी के किनारे एकत्र की थी, वह नदी के प्रवाह में बह गई। नचिकेता पिता की आज्ञा से वहाँ उस एकत्र की गई सामग्री को न पाकर खाली हाथ लौटा, तो उसके पिता ने कहा –

यमं पश्येति तं पुत्रमशपत स महातपाः
तथा स पित्राभिहतो वाग्वज्रेण कृताञ्जलिः।
प्रसीदेति ब्रुवन्नेव गतसत्वोऽपतद् भुवि।।

(महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ७,१
श्लोक ७, ८, ११)

जाओ यमराज को देखो, इस प्रकार उन महातपस्वी ने पुत्र को शाप दे दिया। पिता की वाणी रूपी वज्र से पीड़ित होकर नचिकेता हाथ जोड़कर बोला, प्रभो प्रसन्न होइये। इतना कहते-कहते ही वह निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

आगे की कथा यमराज के यहाँ पहुँच कर यमराज से बातें करके लौटने की है। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि महाभारत की कथा में नचिकेता बेहोशी की हालात में स्वप्नवत् यमराज से मिले। कठोपनिषद की कथा में स्वयं जाकर मिले। यानी पुराणों में बातों को कुछ सरल भाषा में सामान्य मनुष्यों के समझने योग्य बनाया गया है। अतिथि-सेवा का माहात्म्य तो यम-नचिकेता संवाद से स्पष्ट ही है।

पुराणों में अतिथि-सत्कार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यहाँ सबकी चर्चा करना सम्भव नहीं है। जैसे मुद्गल ऋषि और दुर्वासा की कथा है। राजा अम्बरीष और दुर्वासा की कथा है। कबूतर दम्पती द्वारा अतिथि-सत्कार के लिये पूरे परिवार का बलिदान और आत्मोत्सर्ग कर परम गति पाने की कथा है।

उपरोक्त कथाओं का चिन्तन-मनन करने पर यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठता है कि भगवान ने अथवा ऋषियों ने अतिथि बनकर ऐसी कठोर परीक्षायें गृहस्थों की क्यों ली? एक उत्तर इस प्रश्न का यह हो सकता है कि भगवान ने जो गीता में कहा है, उसके अनुसार उन्हें प्रतिदिन ही अवतार लेना पड़ेगा –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

गीता अध्याय-४ श्लोक ७

जब-जब धर्म की हानि होती है, अधर्म का उत्थान होता है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ। धर्म का प्रचार-प्रसार और वृद्धि होने में समय लगता है। परन्तु अधर्म तो स्वाभाविक रूप से बड़ी तेजी से फैलता है। इसलिए समाज में ऐसी व्यवस्था की गई है कि ऐसे विद्वान सदाचारी, संयमी पुरुष भ्रमण करते रहें। वे अतिथि बनकर जहाँ-जहाँ जायेंगे, अपने उपदेशों एवं आचरण से धर्म की जड़ को मजबूत करेंगे। उसके ह्रास की गति को कम करेंगे। समाज के लोग उनकी उपस्थिति से लाभ उठायें, वे भी अपना कार्य सही ढंग से कर पायें। 'अतिथिदेवो भव' का सिद्धान्त उपनिषदों में इसलिए प्रतिपादित किया गया है। यह कहा गया है कि जिस घर से अतिथि निराश होकर लौटता है, उस घर के स्वामी का सारा पुण्य हरण कर ले जाता है तथा अपना समस्त पाप गृहस्वामी को दे जाता है, तो यह सत्य ही है। क्योंकि अतिथि रूप में आये महापुरुषों के सत्संग से वंचित रहकर तो सन्मार्ग से भ्रष्ट होने का भय लगा ही रहेगा। मनुस्मृति के अनुसार अतिथि की सेवा उसकी पात्रता एवं अपनी स्थिति देखकर करनी चाहिए। ऐसा करके अतिथि के नाम पर हमें आतंकित करके कोई ठग नहीं पायेगा। अन्त में अपने विवेक का प्रयोग करके ही अतिथि-सेवा करें। कितनी और कैसे अतिथि-सेवा करें। इस सम्बन्ध में अपनी बुद्धि, विवेक ही प्रमाण है। ○○○

भजन एवं कविता

रामकृष्ण रट नाम

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

अलख-निरंजन भवभय-भंजन, परमहंस सुखधाम।
रे रसना-रामकृष्ण रट नाम।।
आये प्रभु निज लोक त्यागकर, धारे मानुष रूप,
जन-जन पर अति स्नेह लुटाकर, लीला किन्ह अनूप।
पतितोद्धारक परम प्रेममय, पावन पूरणकाम।
रे रसना रामकृष्ण रट नाम।।
अघनाशक दुर्मतिपरिहारी, दीनदयाल जगत-हितकारी,
सतत समाधि-निमज्जित मानस, सकल मनोरथ पूरणकारी।
परमानन्द मगन-मन हर पल, जीते काँचन-काम,
रे रसना रामकृष्ण रट नाम।।
त्रिविध तापहर तपरत जीवन, वर देते वे कल्पतरू बन,
सब-सुख-साधक परमाराधक, चित्ताकर्षक निर्मल तन-मन।
परदुख-कातर विगलित-चित अति, परहित-रत अविराम,
रे रसना रामकृष्ण रट नाम।।
विश्वविधायक मोक्षप्रदाता, शरणागतजन के परित्राता,
ज्ञान-भक्ति-वैराग्य दान कर, मेटें प्रभु मिथ्या जगनाता
कृपादृष्टि निज फेर जीव पर, देते चिर विश्राम,
रे रसना रामकृष्ण रट नाम।।
ठाकुर-शरण में जो भी आया, हर ली प्रभु ने उसकी माया,
निज समान ही निर्मल कर दी, उसका कलुषित अन्तस्-काया।
उनके चरण-कमल में रे मन, कर तू कोटि प्रणाम,
रे रसना रामकृष्ण रट नाम।।

रामकृष्ण प्रभु हृदय विराजो

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

रामकृष्ण प्रभु हृदय विराजो, तुम ही जीवन के हो सार।
जीवन का तम नाश करो प्रभु, हर लो मेरा विषय-विकार।।
त्रिगुणातीत प्रपंचरहित तुम, सब भूतों के हो आधार।
परमानन्दी परमहंस तुम, ब्रह्मरूप तुम हो साकार।।
तुम्हीं प्रेम के परम स्रोत हो, पतितजनों के हो उद्धार।
संशयराक्षस के संहारक, अटल भक्ति के तुम्हीं अगार।।
ब्रह्मा विष्णु महेश देवता, ये सब तेरे ही आकार।
हे जगदीश्वर दुःखतापहर, ज्ञानसिंधु तुम अपरम्पार।।
बुद्धिहीन मैं धर्महीन हूँ, ज्ञान नहीं पूजन-उपचार।
फिर भी कृपा तुम्हारी पाकर, खड़ा हुआ हूँ तेरे द्वार।।
मोक्षविधायक रामकृष्ण प्रभु, विनती तुमसे बारम्बार।
अपना दिव्य रूप दिखलाकर, करो मुझे भव सागर पार।।

शरण रखना मुझे

भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश'

जैसा भी रखे तू, मुझे हर हाल है मंजूर।
जग छूट जाये हे प्रभु ! तू न रहना दूर।।
पूजा-विधि न जानूँ, जानूँ न जप, तप, ध्यान।
बुद्धिबल, साधनविहीन और न कुछ ज्ञान।।
बस तुझे अपना मैं जानूँ, चिन्ता नहीं न चाह।
पथ-कँटीले, देह जर्जर, पकड़ लेना मेरी तुम बाँह।।
हे भक्तवत्सल, गिरिधर मुरारी, लाज रख लेना जरूर।
जग छूट जाये हे प्रभु ! तू न रहना दूर।।

मान, यश, वैभव, प्रतिष्ठा, भोग अभिलाषा नहीं।
तेरे, सिवा अब किसी से, कुछ भी आशा नहीं।।
अपनी कृपा के छाँह में, सदा रखना मुझे।
निज चरण अविचल भक्ति, हर जन्म में देना मुझे।।
शरण रखना मुझे, न बन जाना तुम निष्ठुर।
जग छूट जाये हे प्रभु ! तू न रहना दूर।।

'मनोजवं मारुततुल्यवेगम्' : युवा-ऊर्जा का सन्तुलन

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

'मनोजवं मारुततुल्यवेगम्' – जिनकी (हनुमानजी) गति मन की गति जैसी तेज है और जिनका वेग वायु के समान है। जहाँ लक्ष्य स्पष्ट हो और निष्ठा अटूट, वहाँ मन और वायु दोनों को पीछे छोड़ा जा सकता है। यह केवल हनुमान-स्तुति का एक काव्य-पद नहीं, बल्कि युवा-जीवन को सामर्थ्य, गति, निर्णय-क्षमता और आत्मबल प्रदान करने वाला एक जीवन-मंत्र है।

यह पद हनुमानजी के दो अद्वितीय गुणों को उभारता है –

मनोजवं (depth of mind) – विचारों की स्पष्टता और मन की तीव्र गति।

मारुततुल्यवेगम् (force of action) – कर्म में वायु समान वेग।

आधुनिक युवा यदि इन दोनों गुणों को आत्मसात् कर ले, तो उसका जीवन दिशा, शक्ति और स्थिरता प्राप्त कर सकता है।

मनोजव + मारुत-वेग = सन्तुलित युवा-ऊर्जा

ये दोनों गुण एक साथ मिलकर युवा को रूपान्तरित करते हैं। मनोजव देता है – दिशा, मारुत-वेग देता है – ऊर्जा। युवा यदि केवल मनोजव रखे, तो अधिक सोचकर उलझ सकता है। यदि केवल मारुत-वेग रखे, तो बिना दिशा के दौड़ सकता है।

१. मनोजवं – मन की त्वरित परन्तु स्पष्ट गति

मन के स्तर पर 'गति' का अर्थ है – तेजी से सोचना, सही निर्णय करना, उलझनों को तुरन्त समझना और परिस्थिति के वास्तविक केन्द्र को पहचानना। आज का युवा 'मन की गति' तो रखता है, पर 'उस गति में स्पष्ट दिशा' नहीं रखता। हनुमानजी के मनोजव का तात्पर्य यह नहीं कि मन जितना चाहे उतना दौड़े, बल्कि यह कि उसकी गति लक्ष्यनिष्ठ, सार्थक और समाधानपरक हो।

उदाहरण : अंगद का संकल्प और हनुमान की तत्काल प्रतिक्रिया।

सुन्दरकाण्ड में एक स्थान पर जाम्बवान जब हनुमानजी को उनकी शक्ति स्मरण कराते हैं, वह प्रसंग बहुत प्रसिद्ध है; परन्तु उससे पूर्व का एक अन्य प्रसंग और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है – अंगद पहले समुद्र-लाँघने का संकल्प लेते हैं, पर स्वयं यह स्वीकार करते हैं – 'शक्ति तो है, पर

लौटने का विश्वास नहीं।' तब हनुमानजी शान्त शब्दों में कहते हैं – 'अंगद, यह लक्ष्य मेरा है।' यह 'मनोजव' है – दूसरों के संशय को पढ़कर समाधान की दिशा में तुरन्त मन का स्थिर होना। जो दूसरों के संशय को समझ सके, जो भ्रम की जगह स्पष्टता दे सके, वही व्यक्ति वास्तविक मार्गदर्शक बनता है।

२. मारुततुल्यवेगम् – वायु-सा कर्म-वेग

कर्म की गति वह क्षमता है, जिससे निर्णायक क्षणों में तुरन्त कार्य हो, ऊर्जा बिखरे नहीं, उत्साह बाधाओं से प्रभावित न हो। आज की डिजिटल पीढ़ी का संकट यह नहीं है कि उनमें वेग नहीं है, अपितु संकट यह है कि उनका वेग बिखरा हुआ है। जबकि हनुमानजी का कर्म-वेग वायु जैसा उद्देश्यपूर्ण, निरन्तर और अदम्य शक्ति जैसा है।

उदाहरण : हनुमान का 'विचार-विराम' क्षण – समुद्र-लाँघने से पूर्व तुलसीदास एक अत्यन्त सूक्ष्म घटना लिखते हैं – जब हनुमान पहाड़ की चोटी पर खड़े होते हैं, उनका वेग वायु समान है, परन्तु उसके पहले क्षणभर का एक चिन्तन-विराम है। अर्थात् समुद्र-लाँघने से पहले हनुमानजी पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर क्षणभर रुके, लक्ष्य की दिशा देखी, मन को केन्द्रित किया, फिर वे कूदते हैं और एक ही छलाँग में समुद्र पार किया। यह वही विचार-विराम है – गति से पहले ध्यान का एक छोटा-सा

बिन्दु। यह अदृश्य-सा क्षण है – दिशा-सत्यापन, लक्ष्य स्थिति की पुष्टि, आत्म-शक्ति पर विश्वास। यह हमें बताता है – वेग से पहले एक क्षण का चिन्तन, वेग को दस गुना सार्थक बना देता है। आधुनिक युवा के लिए यह अनमोल सन्देश है – Speed is valuable only after clarity. गति का अर्थ जल्दबाजी नहीं; गति का अर्थ सही दिशा में ऊर्जा का प्रवाह है।

हनुमानजी का यह गुण दर्शाता है – प्रखर सोच, और कर्म-निर्णायक।

आधुनिक युवा-जीवन में इनके प्रयोग

(क) डिजिटल युग में मनोजव – विवेकपूर्ण सोच की कला – कंक का मनोजव : अज्ञातवास की मौन-विवेक-यात्रा – अज्ञातवास पाण्डवों के लिये केवल बाह्य-विपत्ति का समय नहीं था; वह उनके अन्तर्मन की परख का काल था – जहाँ एक क्षण की असावधानी सर्वनाश और एक क्षण की मन:स्थिरता विजय का मार्ग प्रशस्त कर सकती थी।

इस काल में युधिष्ठिर ने 'कंक' नाम के वाणिज्य-विभाग के परामर्शदाता का वेष धारण किया। यह परिवर्तन मात्र वस्त्र-विन्यास का नहीं, बल्कि भाव-विन्यास का था, जहाँ राजा को अपना राजत्व भुलाना था और धर्मराज को अपनी नीति-प्रज्ञा को मौन में संकुचित करना था। राजा विराट का दरबार विविध स्वभावों का संगम था – किसी का दम्भ, किसी का लोभ; किसी की अधीरता, किसी का संशय; और अवसर-विशेष पर कुछ लोगों का कंक के प्रति उपेक्षा-व्यवहार भी। पर आश्चर्य यह है कि कंक – अर्थात् युधिष्ठिर – इन सबके बीच शान्ति की जीवन्त प्रतिमूर्ति बने रहे। वे प्रतिदिन सभा में उपस्थित होते, ध्यानपूर्वक सभी वाद-विवाद सुनते, पर न तो किसी प्रशंसा से भीतर आनन्द की लहर उत्पन्न होने देते, न ही आलोचना से मन में असन्तोष की छाया आने देते। उनकी दृष्टि सदा विवेक-दीप्त और तटस्थ रहती – मानो मन के भीतर एक ऐसी धुरी स्थापित हो गई हो, जिसके चारों ओर सारी परिस्थितियाँ घूमती रहें, पर वह धुरी स्वयं न डगमगाए। विराट-राज्य की उलझनों में भी कंक का परामर्श संयम और विवेक से ओतप्रोत होता था। न तो वे शीघ्र निर्णय के आग्रह में पड़ते, न ही आवेग के क्षण में अपनी वास्तविक सत्ता प्रकट होने देते। उनकी यही मन:स्थितप्रज्ञता उन्हें गुरु, मंत्री और गुप्त संरक्षक – तीनों भूमिकाओं में सक्षम बनाती थी।

आधुनिक युवा के लिये यह प्रसंग अत्यन्त सामयिक शिक्षाप्रद है। आज का डिजिटल संसार भी विराट के दरबार से भिन्न नहीं है – यहाँ भी मत-मतान्तर हैं, त्वरित प्रतिक्रियाएँ, भावनात्मक टिप्पणियाँ हैं – भ्रान्तियों की आँधियाँ, तुलना, विवाद और माानसिक उलझनें – ये सब युवा मन को क्षण-क्षण विचलित और अस्थिर करते हैं। जो युवा आवेग में बहकर उत्तर देते हैं, वे संघर्ष बढ़ा लेते हैं; यदि मन उतावला होकर प्रतिक्रिया करता है, तो व्यक्ति अपनी पहचान खो देता है। पर यदि उनका मन कंक की भाँति शान्त, तटस्थ, धैर्यवान, अन्तर्मुख और विवेकसम्पन्न हो, तो वे न केवल परिस्थितियों को सम्भालते हैं, अपितु उन्हें एक नयी नैतिक दिशा भी देते हैं। उनके लिए हर चुनौती अवसर बन जाती है। 'मनोजव' का सार यही है – पहले मन को स्थिर करो, फिर विचार को पारदर्शी बनाओ, तब निर्णय स्वयं सटीक हो जाता है। कंक की अज्ञातवास-यात्रा स्मरण दिलाती है कि सबसे तीव्र (तेज) और समर्थ बुद्धि उसी में जन्म लेती है, जो भीतर से संयत हो।

(ख) मारुततुल्यवेग – कर्म को 'टाइम-लॉक' करना – किसी कार्य को निश्चित समय-सीमा के भीतर पूरा करने की मानसिक प्रतिबद्धता को 'टाइम-लॉक' कहते हैं। इसका उद्देश्य है: ध्यान भटकने से रोकना, आलस्य से बचना, कार्य को टालने की आदत खत्म करना, कार्यक्षमता बढ़ाना और आत्म-अनुशासन बनाना। अर्थात् आज युवा के पास लक्ष्य हैं, पर उसे प्राप्त करने की तत्परता कम है। काम बाद में, सपना पहले यही समस्या है। मारुततुल्यवेग अर्थात् टाइम-लॉक हमारे मन को बिखरने से बचाता है, काम में तत्परता लाता है, निर्णय और कार्य, दोनों में वेग लाता है। यही कारण है कि इसे आधुनिक आत्म-अनुशासन की प्रभावी तकनीक माना जाता है।

निष्कर्ष – मनोजव और मारुततुल्यवेग – आधुनिक युवा-जीवन के लिए एक गहन प्रेरणा है। यह पंक्ति युवा को सिखाती है – मन तेज़ हो, पर दिशा-स्पष्ट हो। कार्य तेज़ हो, पर विवेक-पूरित हो। ऊर्जा प्रबल हो, पर उद्देश्य के अधीन हो। उत्साह गरजता नहीं, सृजन करता है। यदि आधुनिक युवा इन दोनों तत्त्वों – मनोजव और मारुत-वेग को अपनाए, तो न केवल जीवन की चुनौतियों पर विजय पाएगा, बल्कि स्वयं के भीतर निहित सुप्त-शक्ति को भी पहचान लेगा। यह पद वास्तव में युवाओं के लिए एक घोषवाक्य है – 'गति हो, पर लक्ष्यबद्ध, शक्ति हो, पर शालीन और जीवन हो,

श्रीराम का ब्रह्मत्व

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

अखिल विश्व के दर्शनरूपी वन में सिंह के समान विद्यमान भारतीय ब्रह्मविद्या-वेदान्त का डिण्डिमघोष है – सर्वं खल्विदं ब्रह्म – अर्थात् दृश्य-अदृश्य यावत् पदार्थ हैं, वे सब निश्चय ही ब्रह्म हैं, ब्रह्म का विस्तार हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई नानात्व नहीं है – 'नेह नानाऽस्ति किञ्चन'। वेदान्त का यह महावाक्य तो कण-कण को, तृण-तृण को, क्षण-क्षण को ब्रह्म ही कह रहा है, तब फिर संसार में भेद-दर्शन क्यों? भेद तो वेद (ब्रह्मविद्या) का मन्तव्य नहीं हैं, तो फिर; यह भेद-दृष्टि का परिणाम है। यह भेददृष्टि व्यावहारिक और परमार्थिक दो रूपों में है। जैसे व्यवहार में स्वर्णमय गणेश और स्वर्णमय गर्दभ का अलग-अलग उपयोग है। भक्त गणेश का ही पूजन करेगा, गर्दभ का नहीं, किन्तु स्वर्णकार तो गणेश और गर्दभ में एकत्व-स्वर्ण का ही दर्शन करेगा और दोनों को गला-मिलाकर एक कर देगा। एवमेव संसार में ब्रह्म और जीव का व्यावहारिक दृष्टिभेद है। अणु (अंश) का, व्यष्टि का नाम-जीव और विराट का, समष्टि का नाम-ब्रह्म है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसी तथ्य को उजागर करते हुए कहा है –

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशी।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा –

एकोऽहं सर्वभूतेषु गूढ़ः।

इस संसार में अनेक प्रकार के अत्याचार-अनाचार एवं मिथ्याचार के मूल में ब्रह्म विषयक अज्ञान या क्रूर-अभिमान ही है, क्योंकि अनेक अहंकारमूलक मतवादी लोग अपने-अपने मत-पंथ (चाहे वह पंथ-प्रवर्तक व्यक्ति के नाम पर आधारित हो अथवा सोद्देश्यकल्पित मत-ग्रंथ के नाम पर) और भाषा में व्यक्त ईश्वरवाची नाम को ही एक मात्र सत्य मानकर अन्य मतों-मार्गों और भाषाओं में आये शब्दाभिधान किंवा ईश्वराभिधान को नकारते हुए अपनी बौद्धिक जड़ता को स्वयमेव उजागर करते रहते हैं और उनकी बौद्धिक जड़ता यहाँ तक व्याप्त है कि वे उस परमतत्त्व परमात्मा को निर्गुण-निराकार मानकर अपरों, अन्य मतावलम्बियों का अपमान और उपहास करने में ही अपने को महान और ज्ञानवान मानते रहते हैं। यह उनकी बौद्धिक जड़ता और अभिमान की अधिकता एवं अधमता का ही प्रमाण है कि वे अपनी वैचारिक जड़ता के समान ही सर्वशक्तिमान परमात्मा, परमब्रह्म (किसी भी भाषा में चाहे जो भी समानार्थी शब्द हो) को केवल निर्गुण-निराकार मानकर उसको भी जड़ता के जाल में जकड़ देते हैं। यह कितने घोर अभिमान की घोर मान्यता है? जो परमात्मा केवल निर्गुण-निराकार है, उसका यह सृष्टि-विलास बहुरंगी और बहुरूपात्मक कैसे है? जो 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्समर्थ' होगा, वही तो बहुवर्ण-गन्ध और आकारावाली की सृष्टि कर सकता है, या तो फिर उसकी सत्ता-इयत्ता अलग है, सृष्टि की सत्ता-इयत्ता अलग है। इस प्रकार तो वह परमात्मा स्वयमेव खण्डित-विडम्बित हो जाता है। जो निराकार-निर्गुण ब्रह्म सर्वशक्तिमान होने पर भी स्वयं को सगुण-साकार (व्यक्त) नहीं कर सकता, वह सर्वसमर्थ कैसे हो सकता है और यदि स्वयं को साकार करने की सामर्थ्य परमात्मा में नहीं है, तो भला वह संसार में किसी का क्या उपकार कर सकेगा? ऐसा निर्गुण व निराकार परमात्मा तो केवल जड़ है और ऐसा मतवाद (मजहब) ही सम्पूर्ण विवादों-विषादों की जड़ है।

वस्तुतः निर्गुण-निराकार परमात्मा का कोई एक गुण अथवा एक आकार नहीं है। वह अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न अनेक रूपों में सगुण-साकार हो सकता है, इसी में उसकी परम शक्तिमता, सत्ता और महत्ता है। जो परमात्मा स्वयं समय-समय पर आविर्भूत होकर हमारे कष्टों का हरण, भक्तों के भावों का पोषण और

आदर्श जीवन के आचरण का उदाहरण नहीं दे सकता, वह सर्व-समर्थ ब्रह्म (परमात्मा) नहीं, केवल भ्रम ही तो है। माचिस में आग और दूध में घी निर्गुण-निराकार होता है, किन्तु यदि माचिस से वह आग और दूध से घी सगुण-साकार होकर हमारा उपकार-उपचार न कर सके, तो उसका अस्तित्व किस काम का? परमात्मा केवल निर्गुण-निराकार है, या वह सगुण-साकार होने की सामर्थ्य नहीं रखता, यह विचार हमारी बौद्धिक जड़ता और आडम्बरी अहम्मन्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण ही नहीं, अपितु उस सर्वसमर्थ परमात्मा का अपमान भी है। ऐसी बौद्धिक जड़ता और अहम्वादी मान्यता ही संसार में अनेक प्रकार के अन्याय-अत्याचार-हिंसाचार और मिथ्याचार का आधार बनती रही है।

वास्तव में पूर्णत: परमात्मा हुए बिना अथवा परमात्मा की कृपा-बिना कोई भी व्यक्ति पूर्ण परमात्मा को पूर्णत: देख नहीं सकता है, इसीलिए अनेक लोग अपनी संकुचित दृष्टि और सीमित क्षमता के कारण ईश्वर के यथार्थ को नकार कर अपनी ही कल्पित मान्यता (हाथी को देखनेवाले छह अन्धों के समान) को पूर्णत: सर्व शिरोधार्य मानकर दूसरों से भी मनवाने का अमानवीय अपकर्म करते हैं, जो मानवता और आस्तिकता पर भी घोर प्रहार है।

यहाँ प्रश्न श्रीराम के ब्रह्मत्व का है। प्रश्न यह भी है कि यदि उस निराकार परमब्रह्म परमात्मा को अपने पूर्ण आदर्श रूप में मानव के समक्ष आना ही पड़ जाये, तो वह किस रूप में आयेगा? यदि वह अपने यथावत् पूर्णरूप में प्रकट, आविर्भूत होगा, तो सर्वसामान्य की दृष्टि, सामर्थ्य और व्यवहार से बाहर होगा। अत: मानवलोक को आदर्श जीवन का उदाहरण देने हेतु उसको मानव के रूप में ही आना होगा, तभी वह सभी के लिये व्यवहार्य होगा। वह परमात्मा आवश्यकता एवं अपने इच्छानुसार लोकादर्श के लिये यथासमय ऐच्छिक एवं औपचारिक रूप में आविर्भूत होता है, इसका प्रमाण श्रीमद्भगवद्गीता स्वयं देती है –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

इसी तथ्य को उद्घाटित करते हुए मानसकार गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है –

जब-जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

वस्तुत: परमात्मा करुणा-कोमल एवं सच्चिदानन्दघन है। सृष्टि तो उसका इच्छाविलास है। वेद कहता है –

एकोऽहं बहु स्याम इति सोऽकामयत।

एतावता, वह निर्गुण-निराकार परमात्मा (निर्गता अनन्ता: गुणा: आकारा: यस्मात् – अर्थात् जिससे अनन्त गुण और आकार निकलते हैं) अपनी इच्छा एवं आवश्यकतानुसार समय-समय पर, या जब चाहे, वह अनेक अथवा एक रूप में भी पूर्णत: आविर्भूत हो सकता है, अन्यथा निर्गुण-निराकार परमात्मा केवल निर्जीव और नि:शक्त एक अभिधान मात्र बनकर ही रह जायेगा। वस्तु हमारा जो श्वास है, वह भी तो उसी परमात्मा का ही शक्तिविलास है, तो फिर हम उस सर्वशक्तिमान परमात्मा को केवल निर्गुण-निराकार कहकर उसकी जड़ता एवं अक्षमता की मूढ़तापूर्ण स्थापना क्यों करें?

श्रीराम-रूप में स्वयं सर्वशक्तिमान परब्रह्म ने सगुण-साकार रूप धारण कर मानवलोक का शोकापहरण करके अपने आदर्श आचरण द्वारा मानवता को अभिनव आलोक प्रदान किया। श्रीराम ने एकांगी एककोणीय आचरण नहीं, अपितु आदर्श मानवीय आचरण को समग्रत: प्रस्तुत किया। वे केवल सौन्दर्य के नहीं, शील और शक्ति के भी साकार विग्रह थे। आदर्श मानव का धर्म, उनके कर्तव्य-कर्म एवं स्वभाव-संस्कार, आचार-विचार में सहज ही सर्वसुलभ है। लोकाभिमान मानव को लोकाभिराम श्रीराम के रामत्व का दर्शन करने से वंचित कर देता है। अभिमानी मनुष्य की व्यक्ति-केन्द्रित स्वार्थ-दृष्टि उसको यथार्थ और परमार्थ का साक्षात्कार करने में बाधक बनती है। इसलिए वह राम और रामत्व के विरोध में डटकर खड़ा हो जाता है, किन्तु अन्तत: रावण के समान उसको धूल ही चाटनी पड़ती है। अन्त में तो काम राम से ही बनता है। राम के लिए कोई पराया नहीं है। श्रीराम ने स्वयं कहा है –

सब मोहिं प्रिय सब मम उपजाये। (रा.च. मानस)

'मानस' में गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम का एक और रहस्य एवं रामत्व उद्घाटित किया है –

बैरिहुँ राम बड़ाई करहीं।

श्रीराम सबके हैं, श्रीराम में सब हैं। श्रीराम सभी को अपने अंक में समेटने को आतुर रहते हैं, यही श्रीराम का रामत्व है और यही श्रीराम का ब्रह्मत्व है। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (५७)

(द्वादश अध्याय १२/५)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

जनैकः पथिकः कश्चित् भ्रमन्नेव इतस्ततः।
प्रान्तरे चातिविस्तीर्ण उपागतः स एकदा।।५१।।

– एक बार एक व्यक्ति इधर-उधर घूमते-घूमते एक विशाल विस्तृत स्थान में पहुँचा।

चण्डांशुचण्डतापेन घर्माक्तः स पथश्रमात्।
क्लान्तक्लिष्टोऽतितप्तः सन् तरोर्मूल उपाविशत्।।५२।

– प्रखर सूर्य के प्रचण्ड ताप से श्रमजनित क्लेश और अत्यन्त क्लान्ति से तप्त हो स्वेदपूर्ण शरीर से वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया।

श्रान्त्यपनोदनं कुर्वन् पान्थस्तदेत्यचिन्तयत्।
अहो एका मया प्राप्ता शय्या चेदधुनोत्तमा।।५३।।
तामिहास्तरणं कृत्वा सुखं तदा स्वपिम्यहम्।
कल्पतरु-तलासीनं स्वकं नावहितो हि सः।।५४।।

– तब उस पथिक ने क्लान्ति दूर करते-करते सोचा – अहा ! यदि इस समय एक सुन्दर शय्या मिल जाती, तो यहाँ बिछाकर आराम से सोता। वह पथिक कल्पतरु के नीचे बैठा है, यह उसे ज्ञात नहीं था।

विचित्रं वासनैषा तन्मनसि यावदुत्थिता।
तत्रैकात्युत्तमा शय्या तावदुपस्थिता क्षणात्।। ५५।।

– क्या आश्चर्य है ! जैसे ही उसके मन में यह वासना उठी, तत्काल एक अत्यन्त उत्तम शय्या वहाँ आ गयी।

सोऽतीव विस्मयाविष्टः संस्तस्मिन् शयितोभवत्।
पुनश्च चिन्तयामास प्राप्य शयनमुत्तमम्।।५६।।
अथ चेत् कामिनी काचित् कुरुते पादसेवनम्।
शक्नोमि शयितुं तर्हि सुखेनाहमतीव हि।।५७।।

– उस व्यक्ति ने अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर उस शय्या पर शयन किया। इतनी उत्तम शय्या को पाकर वह सोचने लगा – इस समय यदि कोई युवती पैर दबा देती, तो मैं सुख से सो जाता।

एतत् संकल्पमात्राद्धि वनितैकागता तदा।
पादमूले समासीना पादसेवनतत्परा।।५८।।

– ऐसा संकल्प उठते ही एक युवती उस पथिक के पास बैठकर उसका पैर दबाने लगी।

नासीद्ह्लादावधिस्तस्य दृष्ट्वेमां घटनावलीम्।
ततोऽतीव क्षुधार्तः सन् मनसि स व्यचिन्तयत्।।५९।।

– इन सभी घटनाओं को देखने के बाद उस पथिक की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। उसके बाद उसे बहुत भूख लगी, तो उसने सोचा –

एतावत्तु मया लब्धं यावदेतत् यथेप्सितम्।
उत किमनवाप्तोऽस्मि भोजनञ्च यदीप्सितम्।।६०।।

– मैंने अब तक जो कुछ सोचा था, वह मिल गया। यदि कुछ खाने को सोचूँ, तो क्या नहीं मिलेगा?

ततश्चिन्तनमात्राद्धि न चिरेण किमाश्चर्यम्।
विविधो भोज्यसम्भारस्तत्समीपं समागतः।।६१।।

– उसके ऐसा सोचते ही क्या आश्चर्य है ! तत्काल उसके पास विभिन्न प्रकार की भोजन सामग्री आ गयी।

तेनैवोदरमापूर्य ततः स पथिकस्तदा।
शय्यायां शयितस्तस्यां प्रमदापरिषेवितः।।६२।।

– पथिक उन सब भोज्य सामग्रियों से अपना उदर पूर्ण किया और उस महिला के साथ शय्या पर सो गया।

तदह्नो घटनं सर्वं मनसैवानुचिन्तयन्।
ततः स कल्पयामास कर्त्तव्यं तर्हि किं मया।।६३।।
अस्मिन्नवसरे कश्चिद् यदि शार्दूल आगतः
इदं मननमात्राद्धि व्याघ्रैको घोरदर्शनः।।६४।।
पान्थस्योपरि तत्रैत्य सहसोत्पतितोऽभवत्।
कण्ठं दीर्त्वा पपौ रक्तं पान्थोऽपि पंचतां गतः।।६५।।

– उसके बाद उस दिन की सभी घटनाओं को मन से चिन्तन करते-करते उसने सोचा – 'यदि इस समय हठात् कोई बाघ आ जाय, तब क्या करूँगा।' जैसे ही उसने ऐसा सोचा, तभी हठात् एक बहुत बड़ा बाघ छलांग लगाकर आ गया और उस पथिक का गला फाड़कर रक्त पीने लगा। अन्त में उस पथिक की मृत्यु हो गयी। **(क्रमशः)**

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो ईश्वर-दर्शन को मनुष्य का, चरम लक्ष्य स्वीकार करैं।
जो जगप्रपंच में मातृसुलभ, अति अद्‌भुत प्रेम-दुलार करैं।
जो आत्मशक्ति के दिव्य जागरण, का आह्वान उदार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।३१।।
जो रामकृष्ण नारदीय भक्ति का, अमृतमय उपदेश करैं।
जो क्षमा-दया-वात्सल्य प्रेम का, ही आचरण विशेष करैं।
जो आध्यात्मिक उन्नति के संग, भौतिक समृद्धि स्वीकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।३२।।
जो काम-कांचन-अहंकार से, रहित जीवनाचार करैं।
जो वसुंधरा सम सर्वसहा, मातृत्व भाव साकार करैं।
जो आध्यात्मिक साधना संग, पर-सेवाव्रत स्वीकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।३३।।
जो विविध पथों से आराधन कर, परम सत्य संप्राप्त करैं।
जो निष्ठा-सेवा से सबमें, अपनत्व-भाव को व्याप्त करैं।
जो युगाचार्य वेदान्त-केशरी, का उद्‌घोष उदार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।३४।।
जो अद्भुत भावाधीश्वर अगणित, भावराज्य में वास करैं।
जो नारिसुलभ लज्जा-विनम्रता से, भव-कल्मष नाश करैं।
जो गुरु-आज्ञापालनव्रत से, भारत का पुनरुद्धार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।३५।।
जो नारिजनों को दिव्य भगवती-मूर्ति रूप स्वीकार करैं।
जो दिव्य साधना-सेवा से, जन मन-उन्नयन उदार करैं।
जो निज लोकोत्तर चरित से जन-मन, प्रेरित अपरम्पार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।३६।।
जो भावनेत्र से निज लीलासहचर-दर्शन बहुबार करैं।
जो शान्तिसुधासम विकल प्रार्थना, से सब भव संताप हरैं।
जो भारत की अध्यात्म-संपदा, का जयगान अपार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।३७।।
जो भक्तों के घर जाकर, ईश्वर का कीर्तन-गुणगान करैं।
जो मातृस्नेह छाया देकर ही, सबको अभय प्रदान करैं।
जो मानवता-चिरमंगलकारी, हृदय-प्रेम-विस्तार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।३८।।
जो सच्चे साधक-आराधक बन, तदनुसार आचार करैं।
जो कन्या-वधू-मातृरूपों में, दिव्य प्रेम व्यवहार करैं।
जो अखिल विश्वमानवता तक, निज हृदय प्रेम विस्तार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।३९।।
जो संशय-तर्करहित श्रद्धा से, धार्मिक निष्ठाचार करैं।
जो मातृस्नेह-सेवा द्वारा, सबके मन पर अधिकार करैं।
जो परिव्राजक जिज्ञासु किन्तु, सर्वदा विवेक-विहार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।४०।।
जो दृढ़संकल्पितचित्त भाव-तन्मय, आनन्द विहार करैं।
जो सर्वसुलभ वात्सल्यभावमय, दिव्य प्रेम-संचार करैं।
जो जन-मन को उत्साहित कर, निर्भयता का हुंकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।४१।।
जो मनुज रूप में रहकर भी, नरदेव नाम साकार करैं।
जो नारिसुलभ सद्‌गुण विभूषिता, स्नेह-दुलार अपार करैं।
जो वीरोचित संग्राम-भाव से, सेवा-धर्म प्रचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।४२।।
जो मातृप्रेम के विमल भाव का, शुभादर्श स्वीकार करैं।
जो मातृस्नेहघनविग्रह जग में, वही भाव साकार करैं।
जो मातृशक्ति-उत्थान हेतु, आवाहन बारम्बार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।४३।।
जो मनुज देह में सदानन्दमय, निर्विकार हो वास करैं।
जो मातृस्नेहमय परामर्श से, जगप्रपंच-दुख नाश करैं।
जो अभयमन्त्र से मन की, दुर्बलता पर सतत प्रहार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।४४।।
जो दिव्यप्रेम से अहंकार-उन्मूलन का हुंकार करैं।
जो दिव्यप्रेम की मातृ-मूर्ति, होकर सब जग-व्यवहार करैं।
जो गुरुप्रदत्त उस दिव्य प्रेम का, शुभ संदेश प्रचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।४५।।

सत्ता एक, भिन्न अभिधान

राजेश सरकार

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, कला संकाय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ.प्र.)

(गतांक का शेष भाग)

आर्षग्रन्थों में भी एकमेवाद्वितीय सत्ता का ही विचार किया गया है, जो कृत्य-भेद से सगुण-साकार परमेश्वर के पंच प्रभेद हैं। उत्पत्ति नामक योग से परमेश्वर की हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा संज्ञा है। हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा की सूर्य से तादात्म्यापत्ति है। स्थिति नामक कृत्य के योग से परमेश्वर की विष्णु संज्ञा है। संहृति नामक कृत्य के योग से परमेश्वर की शिवसंज्ञा है। निग्रह नामक कृत्य से परमेश्वर की शक्ति संज्ञा है और अनुग्रह नामक कृत्य के योग से परमेश्वर की गणपति संज्ञा है। उक्त पंचदेवोपासक एक ही परमात्मा के उपासक हैं।

आनन्द रामायण में कहा गया है कि शैव, सौर, गणेश, वैष्णव तथा शाक्त संज्ञक पंचदेवोपासक एक ब्रह्म को उसी प्रकार प्राप्त कर लेता है, जिस प्रकार वर्षा-जल सागर में समा जाता है। वह ब्रह्म उत्पत्ति, स्थिति, संहृति, अनुग्रह, क्रिया तथा नाम-भेद से पंचदेवों के रूप में वैसे ही परिलक्षित होता है, जैसे एक ही व्यक्ति नाम, रूप, क्रिया और सम्बन्ध-भेद से देवदत्त, श्याम, वैदिक और पुत्रादि रूप से निरूपित होता है –

शैवाः सौराश्च, गणेशा, वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
तमेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा।।
एकः स पञ्चधा जातः क्रियया नामभिः किल।
देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः।।[१९अ]

इसी एकत्व की चर्चा महाभारतकार इस प्रकार करते हैं – अग्नि एक ही है, किन्तु अनेक रूपों में प्रज्वलित एवं प्रकाशित होती है। एक ही सूर्य जगत् को तप्त एवं प्रकाशित करता है। तप अनेक प्रकार का है, किन्तु उसका मूल एक ही प्रकार है। एक ही वायु इस संसार में भिन्न-भिन्न रूप से प्रवाहित होती है। समस्त जलों की उत्पत्ति एवं लयस्थान समुद्र एक ही है। उसी प्रकार वह निर्गुण विश्वरूप पुरुष भी एक ही है। उसी निर्गुण पुरुष में सबका लय होता है –

एको हुताशो बहुधा समिध्यते
एकः सूर्यस्तपसो योनिरेका।
एको वायुर्बहुधा भाति लोके।
महोदधिश्चाम्भसां योनिरेकः
पुरुषश्चैको निर्गुणो विश्वरूपस्तं
निर्गुणं पुरुषं चाविशन्ति।।[१९ब]

इसी प्रकार एक सत्ता के अनेक अभिधान के सन्दर्भ में मनुस्मृति में अत्यन्त सुन्दर एवं सटीक श्लोक प्राप्त होता है –

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्।।
एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्।।[२०]

अर्थात् सभी ब्रह्मादि-स्तम्ब पर्यन्त प्राणियों के और सभी तत्त्वों के नियामक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, शुद्ध सोने के वर्ण से तुल्य वर्णवाले, स्वप्नावस्था की बुद्धि से जाने जा सकने वाले उस विलीनाकाशादिक अपने आत्मा को परम पुरुष (पुरुषोत्तम अथवा परमात्मा) जाने, इस परम पुरुष को कोई अग्नि कहते हैं, कोई मनु कहते हैं, कोई प्रजापति कहते हैं, कोई इन्द्र कहते हैं, अन्य कोई प्राण कहते हैं और अन्य कोई शाश्वत ब्रह्म कहते हैं।

श्रुतियों एवं पुराणों में अभिव्यक्त इस सिद्धान्त ने हमारे परवर्ती भारतीय साहित्य को अनुप्राणित किया है। राष्ट्रीय कवि कविकुलगुरु महाकवि कालिदास की रचनाधर्मिता से भला कौन परिचित नहीं है। महाकवि कालिदास की रचनाओं से अभिव्यक्त होता है कि वे शैव अर्थात् शिव के उपासक थे, किन्तु वे विभिन्न देवताओं के प्रति आदर रखते थे एवं यह मानते थे कि ये सब एक ही सत्ता के विविध नाम हैं। इस विषय में 'कुमारसम्भवमहाकाव्य' का अधोलिखित श्लोक महाकवि कालिदास के दृष्टिकोण को स्पष्टतया प्रतिबिम्बित

करता है –

एकैव मूर्तिर्बिभेदे त्रिधा सा सामान्यमेषाम् प्रथमावरत्वम्।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद् वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ।।[२१]

अर्थात् सत्य तो यह है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक ही मूर्ति के तीन रूप हैं और ये सब परस्पर एक-दूसरे से छोटे-बड़े हुआ ही करते हैं। कभी शिवजी विष्णु से बढ़ जाते हैं, कभी ब्रह्मा इन दोनों से बढ़ जाते हैं और कभी ये दोनों ब्रह्मा से बढ़ जाते हैं। उपर्युक्त श्लोक के माध्यम से महाकवि त्रिधा स्वरूप एक मूर्ति का वर्णन करते हैं।

न केवल एक सत्ता के अनेक अभिधान के सन्दर्भ में, प्रत्युत विरुद्ध मतों की स्वीकार्यता भी इस सनातन संस्कृति में प्राप्त होती है। श्रुतियों में उद्धृत हैं कि जिस प्रकार नदियाँ अन्त में समुद्र में विलीन होती हैं, उसी प्रकार विद्वज्जन भी नामरूप से विमुक्त होकर उस परात्पर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, इस सन्दर्भ में निम्नलिखित श्रुति ध्यातव्य है –

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।[२२]

अर्थात् जिस प्रकार निरन्तर बहती हुयी नदियाँ अपने नाम-रूप को त्यागकर समुद्र में अस्त हो जाती हैं, उसी प्रकार विद्वान् नाम-रूप से मुक्त होकर परात्पर दिव्यपुरुष को प्राप्त हो जाता है। उपर्युक्त स्वीकार्यता की भावना अग्रिम उद्धृत पुष्पदन्ताचार्य विरचित शिवमहिम्नस्तोत्र के श्लोक में प्राप्त होती है –

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति।
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पश्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नाना पथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।[२३]

त्रयी (ऋक्, यजुः, साम) सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र पाशुपतमत एवं वैष्णवमत आदि विभिन्न मत-मतान्तर हैं। इनमें (सभी लोग हमारा) यह मत उत्तम है, हमारा मत लाभप्रद है (दूसरों का नहीं), इस प्रकार की रुचियों की विचित्रता से सीधे-टेढ़े नाना मार्गों से चलनेवाले साधकों के लिये एकमात्र प्राप्तव्य (गन्तव्य) आप ही हैं। जैसे सीधे-टेढ़े मार्गों से बहती हुयी सभी नदियाँ अन्त में समुद्र में ही पहुँचती हैं, उसी प्रकार सभी मतानुयायी आपके ही पास पहुँचते हैं।

उपर्युक्त इसी श्लोक को उद्धृत करते हुये स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो (संयुक्त राज्य अमेरिका) में आयोजित विश्वधर्म-संसद में कहा था कि यही वह गुण है, जो सनातन हिन्दू धर्म को संसार के अन्य सभी मतों, सम्प्रदायों से पृथक् करता है। जहाँ अन्य धर्म स्वर्ग या मुक्ति को एकमात्र अपने धर्म-मार्गाश्रित बताते हैं, वहीं सनातन धर्म जगत् के सभी मार्गों, पन्थों को परमलक्ष्याभिगामी स्वीकार करता है।

यही हमारी अन्तः संयोजनात्मकता, अन्योन्याश्रितता एवं पारस्परिक स्वीकार्यता का बीज है। इसका मूल कारण यह है कि हमने अपने लक्ष्य को एक माना है, भले ही उसके नाम-रूप भिन्न हों। किन्तु वह एक ही है। रुचि-भेद से वह उपास्य एवं उपासना-भेद को धारण करता है। यही विचार यहाँ के भारतीय मतों (वैदिक, जैन, बौद्ध, सिक्ख) के मध्य अन्तः संयोजन एवं पारस्परिक स्वीकार्यता को स्थापित करता है। श्री पुष्पदन्ताचार्य शिवमहिम्नस्तोत्र में आगे कहते हैं –

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहस्
त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि।।[२४]

अर्थात् हे भगवन्! परिपक्व बुद्धि वाले प्रौढ़ विद्वान् आप सूर्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप पवन हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं, आप आत्मा हैं, इस प्रकार की सीमित अर्थयुक्त वाणी आपके विषय में कहते रहे हैं, पर हम तो विश्व में ऐसा कोई तत्त्व नहीं देखते, जो स्वयं आप न हों।

समस्त मत-मतान्तर उस एक लक्ष्य की ओर अभिगमन करते हैं। महाकवि कालिदास इस विचार को अपनी ललित भाषा में दृष्टान्तपूर्वक इस प्रकार कहते हैं –

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे।।[२५]

जैसे गंगाजी की सभी धारायें समुद्र में ही गिरती हैं, उसी प्रकार परमतत्त्व को पाने के जितने भी मार्ग बताये गये हैं, वे अलग-अलग शास्त्रों में अलग-अलग रूप से बताये जाने पर भी सब आप में ही पहुँचते हैं।

यही उदारभाव इस समाज को जोड़े हुये है। यही हमारा उदात्त चिन्तन है, जो हमारे समाज में सबके उपास्यों के प्रति आदरभाव सिखाता है। एक संस्कृत पद्य परम्परया बहुशः

उद्धृत किया जाता है –

यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता, कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।[२६]

– 'जिसकी शैव शिव एवं वेदान्ती ब्रह्म कहकर उपासना करते हैं। बौद्ध जिसे बुद्ध तथा प्रमाणपटु नैयायिक कर्त्ता कहते हैं। जैन-परम्परा जिसे अर्हत् तथा मीमांसक जिसे कर्म मानते हैं, वे त्रैलोक्य के स्वामी श्रीभगवान् हमारी मनोकामना को पूर्ण करें।' उपर्युक्त संस्कृत पद्य अत्यन्त सुष्ठु रूप से एक सत्ता के विभिन्न अभिधान एवं हमारी सामाजिक एवं धार्मिक अन्तः संयोजनात्मकता को अभिव्यक्त करता है।

प्रतिष्ठित जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर भी शिवमहिम्न-स्तोत्र के पूर्व उद्धृत पद्य के भाव को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं –

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि नाथ! दृष्टयः।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते प्रविभक्तासु सरित्स्वुदधिः।।[२७]

इसी अन्तः संयोजनात्मक एवं पारस्परिक स्वीकार्यता के निमित्त भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य द्वारा चार मठों (ज्योतिर्मठ, शृंगेरी, गोवर्धन एवं द्वारका) की स्थापना की गयी। इसके द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र परस्पर एक हुआ। चतुर्धाम (बद्रीनाथ, सेतुबन्ध रामेश्वरम्, जगन्नाथपुरी, द्वारकाधीश), सप्तपुरी (अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जयिनी, पुरी), द्वादश ज्योतिर्लिंग, इक्यावन शक्तिपीठ आदि की व्यवस्था ने इस प्राचीन देश को भौगोलिक एवं सांस्कृतिक रूप से अन्तःसंयोजित करके रखा।

जब महाकवि भर्तृहरि कहते हैं कि 'एको देवः केशवो वा शिवो वा' अर्थात् देव एक हैं, चाहे केशव हों या रुद्र, तो यह इस समाज को सूत्रात्मक रूप से जोड़नेवाला होता है। गोस्वामी तुलसीदास भी अपने आराध्य श्रीराम से शिव के प्रति सम्मान-आदर-भाव व्यक्त करवाते हैं एवं सेतुबन्ध रामेश्वरम् के विग्रह की स्थापना एवं सविधि पूजा करवाते हैं–

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा।
सिव समान मोहि और न दूजा।।
जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं।
ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं।।[२८]

इतना ही नहीं, भक्तों को सावधान करते हुये गोस्वामी तुलसीदास जी अपने आराध्य श्रीराम से कहलवाते हैं –

शिवद्रोही मम भगत कहावा।
सो नर सपनेहु मोहि न पावा।।[२९]

इसी प्रकार रामचरितमानस में श्रीशिव माता पार्वती को रामकथा सुना रहे हैं और श्रीराम की महिमा का गान कर रहे हैं।

मंगल भवन अमंगलहारी।
उमा सहित जेहि जपत पुरारी।।

यही उपास्यगत एकरूपता, बहुत्व में एकत्व की संस्कृति अन्तःसंयोजन मनुष्य को मुक्तावस्था में ले जाता है, जिस अवस्था में वह वर्ण, जाति, सम्प्रदाय आदि उपाधिगत भेदों से विमुक्त हो जाता है। पूज्यपाद भगवत्पाद शङ्कराचार्य जी के शब्दों में वह दशा कुछ इस प्रकार है, जब व्यक्ति उपाधि-भेदरहित होकर परमात्मतत्त्व से स्वयं को एकाकार कर लेता है –

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा
न मे धारणध्यानयोगादयोऽपि।
अनात्माश्रयाहं ममाध्यासहानात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।।
न सांख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं
न जैनं न मीमांसकादर्मतं वा।
विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।।[३०]

एक तत्त्व की अनेक संज्ञा के सन्दर्भ में सभी आचार्यों ने वितर्कहीन होकर एक स्वर में अपनी स्वीकृति प्रदान की एवं अपनी-अपनी शैली में एक तत्त्व के अनेक अभिधान की भावना को प्रचारित किया। इस सन्दर्भ में कथन बहुधा उद्धृत किया जाता है –

तीर्थक्रियाव्यसनिनः स्वमनीषिकाभि
रुत्प्रेक्ष्य तत्त्वमिति यद्यदमी वदन्ति।
तत् तत्त्वमेव भवतोऽस्ति न किञ्चिदन्यत्
संज्ञासु केवलमयं विदुषां विवादः।।[३१]

अर्थात् विविध शास्त्रों के रचयिता मनीषीगण अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कल्पना करके तत्त्वों की विभिन्न प्रकार की व्याख्या करते हैं। इन विद्वानों ने जो कुछ प्रतिपादित किया है, वह सब आपका ही स्वरूप है, आपसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है। विद्वज्जनों का यह विवाद केवल नाम को

लेकर है। अर्थात् नाना शास्त्रों में जो कुछ भी प्रतिपादित है, उसमें मूलतत्त्व के नाम-भेद के सिवाय अन्य कुछ भेद नहीं है।

इस प्रसंग में एक कथा प्राप्त होती है। प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र अपने आश्रयदाता राजा कुमारपाल के साथ प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर जाकर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सहिष्णुभाव से स्तुति करते हुये कहते हैं – भवबीजांकुर के जनक रागादि जिसके नष्ट हो गये हैं, वे चाहे ब्रह्मा हों, विष्णु हों, शिव हों, महावीर हों, उनको नमस्कार हैं –

भवबीजांकुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै।।

इस क्रम में बहुत्व में एकत्व की परिकल्पना के सन्दर्भ में **जोनराज** राजतरङ्गिणी में कहते हैं, स्वयं निर्मित चिद् और अचिदों से अपने रूप को व्यक्त करते हुये, देश, काल, कल्पना जिसका तेज उन्मीलित से कल्लोलित होता है, वह आत्मा हो, शिव हो, हरि हो, आत्मभू (ब्रह्मा), हो, बुद्ध हो, जिन हो अथवा परे हो, उसे हम नमस्कार करते हैं –

स्वं रूपं चिदचिद्भिरेभिरभितो व्यञ्जत्स्वयं निर्मित-
र्यस्योन्मीलति देशकालकलनाकल्लोलितं तन्महः।
आत्मा वास्तु शिवोऽस्तु वास्त्वथ हरिः सोऽप्यात्मभूरस्तु वा।
बुद्धो वास्तु जिनोऽस्तु वास्त्वथ परस्तस्मै नमः कुर्महे।।[३२]

शिव-विष्णु की एकता के सन्दर्भ में पद्मपुराण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है। इस प्रसंग में कहा गया है कि एक ही देव ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश त्रिविध रूप में प्रकट होते हैं। ये तीनों पारमार्थिक दृष्टि से एक हैं –

शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम।
द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनोः।।
शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरुपिणे।
शिवस्य हृदये विष्णुः विष्णोश्च हृदये शिवः।।
एकमूर्तिस्त्रयो देवाः ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।
त्रयाणामन्तरं नास्ति, गुणभेदाः प्रकीर्तिता।।[३३]

यही बहुत्व में एकत्व-दर्शन तथा अन्तःसंयोजनात्मकता हमारी सामाजिक संस्कृति का मूलाधार है, जो हमें सम्पूर्ण विश्व में एक विशिष्ट पहचान देता है। आज इस भावना की अधिक प्रासंगिकता है। ये विचार ही सभी धर्मों, सम्प्रदायों एवं पन्थों में पारस्परिक सौहार्द की स्थापना कर सकते हैं, विश्वमानव के लिये सहिष्णु, शान्तिमय समाज का निर्माण कर सकते हैं। ○○○ **(समाप्त)**

सन्दर्भ ग्रन्थ – १९अ. आनन्दरामायण ८/९-१० **१९ब.** महाभारत शान्तिपर्व ३५१/१० **२०.** मनुस्मृति १२/१२२-१२३ **२१.** कुमारसम्भव ७/४४ **२२.** मुण्डकोपनिषद् ३/२/८ **२३.** शिवमहिम्नस्तोत्र ७ **२४.** वहीं. २६ **२५.** रघुवंश १०/२ **२६.** हनुमन्नाटक १/३ **२७.** सिद्धसेन बत्तीसी, चतुर्थ बत्तीसी, श्लोक १५ **२८.** रामचरितमानस, लंकाकाण्ड (सेतुबन्ध प्रसंग) ६/१/६, ६/२/२ **२९.** वही **३०.** दशश्लोकी (शंकराचार्य) २ तथा ४ **३१.** अवधूत सिद्ध विरचित भक्तिस्तोत्र २१ **३२.** राजतरङ्गिणी (जोनराज) ३०८ **३३.** पद्मपुराण भूमि खण्ड

सहायक-ग्रन्थ – १. ऋग्वेद, सम्पादक-पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक, संस्कृति संस्थान ख्वाजा कुतुब नगर (वेदनगर) बरेली उ.प्र., वर्ष-२००२। **२.** यजुर्वेद, सम्पादक-पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक-संस्कृति संस्थान, वेदनगर, बरेली उ.प्र., वर्ष-२००२। **३.** सामवेद, सम्पादक-पं श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक – संस्कृति संस्थान, बरेली उ.प्र., वर्ष -२००२। **४.** अथर्ववेद, सम्पादक-पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक संस्कृति संस्थान, बरेली उ.प्र. वर्ष – २००२। **५.** ईशादि नौ उपनिषद् शाङ्करभाष्यार्थ सानुवाद गीताप्रेस, गोरखपुर (उ.प्र.) (७वाँ पुनर्मुद्रण)। **६.** बृहदारण्यकोपनिषद् शाङ्करभाष्यार्थ सानुवाद गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.) (७वाँ पुनर्मुद्रण)। **७.** ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद, सम्पादित-श्रीवासुदेव लक्ष्मण पणशीकर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी २०१० पुनर्मुद्रित संस्करण। **८.** उपनिषद् वाक्य-महाकोषः, संकलक-श्रीगजानन शम्भु साधले, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी। **९.** श्रीमद्भगवदगीता सानुवाद गीता-प्रेस गोरखपुर (उ.प्र.) वर्ष २०७५ (पन्द्रहवाँ पुनर्मुद्रण)। **१०.** कूर्मपुराण (सचित्र हिन्दी अनुवाद सहित) गीता-प्रेस गोरखपुर, उ.प्र. सं० २०७३ (नवाँ पुनर्मुद्रण)। **११.** स्कन्दपुराण (संक्षिप्त) गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र. २०१०। **१२.** महाभारत खिलभाग श्रीहरिवंश पुराण (हिन्दी टीका सहित) गीताप्रेस गोरखपुर, उ.प्र.। **१३.** पुराणपर्यालोचनम् (भागद्वय) लेखकः – श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, सम्पादकः – डॉ. विश्वनाथ पाण्डेयः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी २०१२ **१४.** मनुस्मृतिः परिमार्जकोऽनुवादकश्च – शिवराज आचार्यः कौण्डिन्यायनः, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, २०१४ (प्र.सं.) **१५.** शङ्करस्तोत्रमुक्तावली, सम्पादक एवं अनुवादक–शरदिन्दु कुमार त्रिपाठी, प्रकाशक-श्रीकाञ्ची-काम-कोटिपीठ शंकराचार्य मठ, वाराणसी, उ.प्र. २००३ (प्र.सं.) **१६.** शिवस्तोत्ररत्नाकर, गीता-प्रेस गोरखपुर, सं. २०६९ (छब्बीसवाँ पुनर्मुद्रण) **१७.** दशश्लोकी (www.sanskritdocuments.org) **१८.** कालिदास-ग्रन्थावली, सम्पादक पं. सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, सं. २००५ वि. (हि.सं.) **१९.** हनुमन्नाटक (दामोदर मिश्र) भाषाटीका समेत, मुद्रक व प्रकाशक-गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण बम्बई, १९५८ ई.। **२०.** रामचरित-मानस, गीताप्रेस, गोरखपुर उ.प्र. **२१.** राजतरंगिणी, जोनराज (हिन्दी अनुवाद) डॉ. रघुनाथ सिंह, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी, १९७२ ई.। **२२.** आनन्द रामायण, ज्योत्स्ना हिन्दी व्याख्या मूल संस्कृत सहित – पं. रामतेज पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली २०२१ **२३.** महाभारत (शान्तिपर्व) गीताप्रेस गोरखपुर, उ.प्र. **२४.** सनातनधर्मप्रश्नोत्तर-मालिका, पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी, स्वस्ति प्रकाश संस्थान, गोवर्द्धनमठ, पुरी।

अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक दिवस विशेष

पुस्तक का हमारे जीवन में महत्त्व

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

क्या आज हम पुस्तकों से दूर होते जा रहे हैं? यदि वर्तमान समाज पर दृष्टि डाली जाये, तो ऐसा सोचना सच प्रतीत होता है। टी.वी., स्मार्ट फोन, विडियो गेम्स, इंटरनेट आदि के उपयोग से इतना समय नहीं बचता है कि पुस्तकों को पढ़ें। कुछ लोगों को पुस्तक पढ़ने में रुचि नहीं होती है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो विद्यार्थी काल में अपने पाठ्यक्रम की पुस्तकें ही पढ़ते हैं। बहुत कम लोग होते हैं, जो किसी समस्या का समाधान तथा अपने-ज्ञान को बढ़ाने के लिये पुस्तकों का अध्ययन करते हैं। पुस्तक केवल ज्ञान के अभिवर्धन के लिए ही आवश्यक नहीं होती, बल्कि वह हमारी कल्पना-शक्ति और वैचारिक क्षमता को बढ़ाती है। किन्तु जिस प्रकार हम पुस्तकों से दूर होते जा रहे हैं, उसी प्रकार हमारी कल्पना-शक्ति, स्मृति-क्षमता, विचार-शक्ति में कमी होती जा रही है। हमारी रचनात्मक शक्ति, सकारात्मक चिन्तन में भी कमी आ रही है। आज सबके जीवन में तनाव, चिन्ता, अवसाद आदि की जो समस्या है, उसका कारण अपरिपक्व सोच और जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टि है। जब हम पुस्तकों में घटनाओं, कहानियों व उदाहरणों को पढ़ते हैं, तो हम जीवन को एक नये सकारात्मक ढंग से देख पाते हैं और दूसरों को भी नया दृष्टिकोण दे पाते हैं।

वर्तमान में नई पीढ़ी गूगल पर ही अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढने व फेस बुक पर अपने मित्र बनाने में व्यस्त हो गई है। अब वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं कि यह वर्तमान पीढ़ी के लिए खतरे का संकेत हो सकता है। एक शोध अध्ययन के अनुसार पुस्तकें पढ़ना मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है। कुछ लोग पुस्तकें पढ़ते तो हैं, पर निरन्तरता नहीं रख पाते। एक बार पढ़ने के बाद लम्बा अवकाश देते हैं। किन्तु अध्ययन में निरन्तरता होनी चाहिए। जिस प्रकार हम घर को प्रतिदिन झाड़ू-पोछा कर सफाई करते हैं, उसी प्रकार पुस्तक पढ़ने से हमारे भीतर में जमा मैल साफ हो जाता है। आज का युवा साहित्य, संस्कृति और समाज से दूर जा रहा है, जैसे मोबाइल पर भेजे जानेवाले संदेश की भाषा का वास्तविक जीवन में कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

आजकल लोग सोशल मिडिया से सुनते हैं और उसको व्यवहार में लाने का प्रयास करते हैं। जबकि प्राचीन साहित्य, वेद, आदि में कहा है – स्मरण, मनन, निदिध्यासन – सुनो, मनन करो और उसके बाद आचरण करो। आजकल देखते हैं, सुनते हैं और आचरण कर लेते हैं। विचार करने की प्रवृत्ति खो गयी है, क्योंकि हमने पढ़ना, चिन्तन करना छोड़ दिया

है। पुस्तक हमें विचार करने के लिये, सोचने के लिए बाध्य करती है। लेकिन मीडिया हमें सोचने के लिये उत्साहित नहीं करती, केवल करने के लिये प्रोत्साहित करती है। मोबाईल निर्भरता उनमें शब्द-भंडार का क्षेत्र विकसित करने में बाधक बनती है। पुस्तकें पढ़ने की प्रवृत्ति यदि नई पीढ़ी में नहीं आई, तो आनेवाले समय में ऐसे बच्चों की पीढ़ी पैदा होगी, जिनके लिए पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान एक अबूझ पहेली बन कर रह जायेगी। इतना ही नहीं, यह पीढ़ी वैचारिक दृष्टि से अपरिपक्व होगी, स्वावलम्बी नहीं हो पायेगी।

बच्चों, इसलिए प्रतिदिन अच्छी पुस्तकें थोड़ा-थोड़ा पढ़ने का संकल्प लेना चाहिए। दिनभर के दौड़-भाग में पढ़ने का समय न निकाल सकें, तो प्रात:काल या रात्रि में सोने से पहले थोड़ा अध्ययन कर, चिन्तन-मनन कर पूरे दिन को बेहतर बना सकते हैं। क्योंकि पुस्तकें हमारी सदा साथ रहनेवाली मित्र और मार्गदर्शक हैं। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

पन्द्रहवाँ अध्याय (१५/१)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १५वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

पन्द्रहवाँ अध्याय

संसार वृक्ष का स्वरूप

संसार की तुलना अश्वत्थ के वृक्ष से

गीता का पन्द्रहवाँ अध्याय पुरुषोत्तम योग के नाम से जाना जाता है। यह मानो गीता का अन्तिम अध्याय है। इसके बाद आनेवाले अध्याय सोलहवाँ और सतरहवाँ मानो परीक्षित के समान हैं। अठारहवें अध्याय को हम गीता का उपसंहार कह सकते हैं। भगवान ने अभी तक अर्जुन को जो कुछ बताया, उसका सार वे पन्द्रहवें अध्याय में व्यक्त कर देते हैं। पुरुषोत्तम योग यह नाम भी महत्त्वपूर्ण है। पन्द्रहवें अध्याय से पहले साक्षात् ईश्वर से युक्त करनेवाला कोई भी अध्याय नहीं मिला। यही एक अध्याय है, जो पुरुषोत्तम से युक्त होने की बात कहता है। इस दृष्टि से इस अध्याय का विशेष महत्त्व हो जाता है।

श्रीभगवान इस अध्याय के प्रारम्भ में संसार की तुलना एक अश्वत्थ वृक्ष से करते हैं और यह बताते हैं कि यह संसार वृक्ष कैसा है। पहला श्लोक यह कहता है –

श्रीभगवान उवाच

ऊर्ध्वमूलमध:शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।१।।

श्रीभगवान उवाच (श्रीभगवान बोले) ऊर्ध्वमूलम् (ऊपर की ओर जड़ वाले) अध:शाखम् (नीचे की ओर शाखाओं वाले) अश्वत्थम् अव्ययम् प्राहु: (संसाररूपी पीपल वृक्ष को अविनाशी कहते हैं) छन्दांसि यस्य पर्णानि (वेद जिसके पत्ते हैं) तम् य: वेद (उसको जो पुरुष तत्त्वत: जानता है) स: वेदवित् (वह वेद के तात्पर्य को जानता है)।

"ऊपर की ओर जड़ वाले और नीचे की ओर शाखाओं वाले संसाररूपी पीपल वृक्ष को अविनाशी कहते हैं, वेद जिसके पत्ते हैं, उसको जो पुरुष तत्त्वत: जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानता है।"

यह जो संसार-वृक्ष है, उसे अश्वत्थ कहा गया। श्व – कल। त्थ – रहनेवाला। अत: अश्वत्थ का अर्थ हुआ, जो कल रहनेवाला न हो। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति है – अश्व के समान विचरण करनेवाला। जो बढ़िया घोड़ा होता है, वह कभी स्थिर खड़ा नहीं रह सकता। एक स्थान पर खड़े रहने पर भी वह बारम्बार पैर बदलता रहता है। यह संसार भी अश्व के समान ही चंचल और गतिशील है। अभी जो बिन्दु है, वह बिन्दु दूसरे क्षण नहीं रहता। कल जो नहीं रहेगा, वह संसार है।

ऐसा जो संसार-वृक्ष है, उसे अव्यय के नाम से भी पुकारा गया। एक ओर तो कहा गया कि वह अश्वत्थ है, जो कल नहीं रहेगा और दूसरी ओर कहते हैं अव्यय, जिसका नाश नहीं होता। इन दोनों में विरोधाभास मालूम पड़ता है। छन्दांसि यस्य पर्णानि – छन्द जिसके पत्तों के समान हैं। भिन्न-भिन्न छन्दों में ऋचाओं की रचना हुई है। वेद ऋचाओं से भरे हैं। वेदों को छन्द के नाम से भी पुकारा गया है। ये वेद पर्ण के समान हैं। वृक्ष की रक्षा पत्ते करते हैं। पत्ते वृक्ष को रक्षा भी प्रदान करते हैं, शोभा भी प्रदान करते हैं। ये

वेद भी इस संसार-वृक्ष की रक्षा करते हैं और इसे शोभा प्रदान करते हैं। जिसने इसे जाना, उसी ने ठीक-ठीक ज्ञान को हस्तगत किया। जिसने संसार-वृक्ष के स्वरूप को जान लिया कि वह किस अर्थ में अश्वत्थ है और क्यों इसे अव्यय कहकर पुकारा गया, जो कल नहीं रहेगा, वह अव्यय कैसे हो गया, जो इस रहस्य को जान लेता है, वही ठीक-ठीक ज्ञाता है और उसी ने वेद के अर्थ को जाना है। अगले श्लोक में कहते हैं –

व्यक्ति का संसार-वृक्ष ईश्वर के संसार-वृक्ष से अलग

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखाः
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।२।।

तस्य विषयप्रवालाः गुणप्रवृद्धाः (उस संसार वृक्ष की विषय-भोगरूपी कोपलें त्रिगुणों से पोषण प्राप्त करती हैं) शाखाः अधः च ऊर्ध्वम् प्रसृताः (उसकी शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं) मनुष्यलोके मूलानि अधः (मनुष्यलोक में कर्मों से बाँधनेवाली जड़ें नीचे) च अनुसन्ततानि (की ओर फैली हैं)।

''उस संसार वृक्ष की विषयभोगरूपी कोपलें त्रिगुणों से पोषण प्राप्त करती हैं, उसकी शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं, मनुष्यलोक में कर्मों से बाँधने वाली जड़ें नीचे की ओर फैली हैं।''

अब यहाँ दूसरे श्लोक में पुनः इस संसार-वृक्ष की विशेषता सूचित की गयी है। इस अश्वत्थ वृक्ष की शाखाएँ नीचे भी फैली हैं और ऊपर भी फैली हैं। पिछले अध्यायों में जिन तीन गुणों – सत्त्व, रज, तम की चर्चा हम करते आए हैं, वे इन शाखाओं को रस प्रदान करते हैं, पोषक-तत्त्व देते हैं, जिससे ये शाखाएँ इधर-उधर फैलती हैं। इन शाखाओं पर कोपलें उग आती हैं। विषय ही इस संसार-वृक्ष के कोपलों के रूप में आते हैं। इस वृक्ष की जड़ें मनुष्य-लोक में नीचे की ओर फैली हैं। वे जड़ें कर्मों के नियम से बँधी हैं।

पहले श्लोक में कहा गया था कि इस संसार-वृक्ष की शाखाएँ नीचे की ओर गई हैं और इसकी जड़ें ऊपर हैं। दूसरे श्लोक में कहते हैं, इसका मूल नीचे की ओर गया हुआ है और शाखाएँ ऊपर और नीचे फैली हैं। दोनों में विरोधाभास लगता है। यह तो भ्रमित कर देता है, पर भगवान भ्रमित नहीं करते। दोनों वृक्ष दो भिन्न दृष्टिकोणों से हमारे समक्ष रखे गए हैं। पहले जिस वृक्ष का वर्णन आया है, उसे कहते हैं ब्रह्माश्वत्थ। वह संसार है। जो संसार ब्रह्म से निकला है, उसे ब्रह्माश्वत्थ कहते हैं। दूसरा वृक्ष हुआ कर्माश्वत्थ, जो कर्म से निकलता है। एक संसार तो भगवान रचता है और दूसरा संसार गुण रचते हैं। हम अपने संसार की रचना स्वयं करते हैं। ईश्वर ने अपने संसार की रचना की। अब उस संसार में जो गुण की रचना हुई, वे भी अपने संसार की रचना करते हैं। इसीलिए प्रत्येक गुण का संसार दूसरे गुण के संसार से विलग होता है।

आनुवंशिक क्रम केवल शारीरिक नहीं

एक परिवार में मान लीजिए चार प्राणी हैं – पिता, माता, पुत्र, पुत्री। प्रत्येक प्राणी अपने निजी संसार का ताना-बाना अलग ढंग से बुनता है। इसी तरह भगवान ने एक संसार की रचना कर दी। अब इस संसार में जितने भी व्यक्ति हैं, वे सब अपने संसार की रचना अपने कर्मों के द्वारा करते हैं। एक ही परिस्थिति में यदि हम इन लोगों को रख दें, उन्हें एक ही जैसा भोजन दें, एक जैसा ही वातावरण दें, उनके जन्म के समय से ही चाहे हम वैसा करें, पर अन्त में जाकर प्रत्येक व्यक्ति का संसार दूसरे व्यक्ति के संसार से भिन्न रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि एक ही परिस्थिति में रहकर भी प्रत्येक व्यक्ति अपना अलग संस्कार व्यक्त करता है। ये संस्कार आनुवंशिक होते, तो एक माता-पिता की सन्तानों में तो समान ही होने चाहिए थे। वास्तव में ये संस्कार प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा अपने पूर्वजन्मों में संचित किए हुए होते हैं। आनुवंशिक क्रम को हम पूरी तरह से अस्वीकार नहीं करते। मानसिक निर्माण और शारीरिक बनावट के रूप में उसे हम स्वीकार करते हैं।

जैसे मैं यदि अभी मर जाऊँ, तो मेरी जैसी भावना रहेगी; इस जन्म में जैसे मैंने संस्कार अर्जित किए होंगे, मुझे उन संस्कारों के अनुरूप ही मेरे उन संस्कारों में वृद्धि करने वाले ऐसे माता-पिता मुझे अगले जन्म में मिलेंगे। उनके संस्कार भी मुझमें आएँगे, इतना आनुवंशिक क्रम हम स्वीकार करते हैं। मेरे शरीर की बनावट माता-पिता के शरीर की बनावट से प्रभावित होगी। मेरा मन भी उनके मन से प्रभावित होगा, परन्तु पूरी तरह से नहीं। पूर्ण रूप से आनुवंशिक क्रम से संस्कार होता, तो साधु स्वभाव के माता-पिता के घर में

असाधु सन्तान क्यों पैदा होती?

इसीलिए कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न संसार की रचना करता है। अपने संस्कारों के अनुसार हम अपना संसार बना लेते हैं। इस दूसरे श्लोक में जिसका वर्णन है, वह मनुष्य का संसार है। मैं अपना संसार कैसे बनाता हूँ? बताया गया है कि मेरी जो जड़े हैं, वे नीचे की ओर गई हुई हैं। यह परम सत्य है। मेरे इस संसार का पोषण कैसे होता है? जड़ों के द्वारा। जड़ें जो नीचे गई हैं, सो नीचे क्या है? नीचे मनुष्यलोक है। मनुष्यलोक में जड़ें होने का अर्थ है कि मनुष्यलोक में मेरी वासनाएँ फैली हुई हैं और इन वासनाओं के रस से पोषण प्राप्त करके मेरा यह संसार बनता है। भगवान ने जो संसार-वृक्ष पैदा किया है, उसकी जड़ें कहाँ हैं? कहते हैं कि भगवान के ही पास हैं। यह संसार-अश्वत्थ भगवान के पास से ही आता है। भगवान इसकी जड़ है। इसका मूल है। इस प्रकार इस संसार-वृक्ष की जड़ें तो हो गई ऊपर की ओर और इसकी शाखाएँ फैली हुई हैं नीचे की ओर। परन्तु हमारे निर्माण किए संसार-वृक्ष की जड़ें सब की सब नीचे वासनामय मनुष्यलोक की ओर हैं। हम भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म करते हैं और कर्म हमें संस्कार प्रदान करते हैं। उन संस्कारों से हमारा संसार बनता है, हमारी दुनिया बनती है।

हमारी इच्छायें ही हमारे कर्मबन्धन का कारण

तो कर्मानुबन्धी का अर्थ हुआ कि हमारे व्यक्तिगत संसार-वृक्ष की जो जड़ें फैली हैं, वह वासनाओं से जन्म लेनेवाले कर्मों के द्वारा उस वृक्ष का पोषण करती हैं। इस वृक्ष की शाखाएँ ऊपर हैं अर्थात् मृत्यु के समय सत्त्वगुण की प्रधानता से अपने कर्मों के फलभोग हेतु मनुष्य स्वर्गारोहण करता है। मृत्यु के समय जिनका रजोगुण प्रबल रहता है, वे फिर से इसी मनुष्यलोक में आते हैं, मनुष्य बनते हैं, कर्म करते हैं। मरने के समय जिनका तमोगुण प्रबल होता है, वे निम्नतर योनियों में जन्म लेते हैं। पशु, कीट आदि बनते हैं। इसीलिए कहा गया कि मनुष्य द्वारा जिसकी रचना हुई है, उस वृक्ष की टहनियाँ ऊपर भी जाती हैं और नीचे भी जाती हैं। मैं अच्छे कर्म करता हूँ, तो उनके फलभोग के लिए ऊपर की ओर स्वर्ग में जाता हूँ और अच्छे कर्म नहीं करता, तो नीचे की ओर निम्न योनियों में जाता हूँ। यह कर्म तो केवल मनुष्यलोक में ही होता है। जड़ को संपोषण मनुष्यलोक में ही प्राप्त होता है। स्वर्गलोक में हम कोई कर्म नहीं कर सकते। हमारे पुण्य भले ही तीव्र हों, पर स्वर्ग में हम कर्म नहीं कर सकते। वहाँ तो मनुष्य अपने पुण्यकर्मों के भोग के लिए ही जाता है। इसी प्रकार पापकर्मों के भोग के लिए वह अवान्तर नीची योनियों को प्राप्त होता है। वहाँ भी केवल अपने पापकर्मों के फल का भोग ही कर सकता है। केवल मनुष्यलोक ही ऐसा है, जहाँ पर मनुष्य कर्म कर सकता है और कर्म करते हुए अपने संसार-वृक्ष को भी उपजाता है। यह कर्मलोक है, जो मनुष्यलोक में ही सम्भव है। इसलिए भगवान कहते हैं कि व्यक्ति का संसार-वृक्ष गुणों से प्रवृद्ध होता है। गुणों की त्रिपुटी इस वृक्ष का सिंचन करके इसका पोषण करती है और इसमें विषयों की कोपलें फूटती हैं।

इस संसार की कई जड़ें नीचे की ओर गई हुई हैं। संसार-वृक्ष की एक ही जड़ थी – ब्रह्म। ब्रह्म उसका एक ही मूल था, जिससे यह संसार-वृक्ष निकला, पर व्यक्ति जो वृक्ष उपजाता है, उसकी तो कई जड़ें निकल आती हैं और ये जड़ें नीचे की ओर जाती हैं। इस जीवन में कितनी वासनाएँ हैं। हमारे जीवन में कितने भोग-केन्द्र विषय-भोग हैं। ये सारे-के-सारे विषय, सारी-की-सारी वासनाएँ मानो हमारी इन जड़ों को पोषण का तत्त्व देती हैं और उससे हमारा यह संसार-वृक्ष मोटा होता जाता है। व्यक्ति का निजी संसार-वृक्ष बिना किसी नियम के हो, ऐसी बात नहीं है। वह यों ही फैल जाता है, ऐसा भी नहीं है। उसके पीछे नियम हैं। कर्मों के नियम हैं। कोई कहे कि मैंने तो अच्छे कर्म किए थे, फिर इस प्रकार का दुःख भोग मुझे क्यों मिला? तो यह उसकी नादानी है। ईश्वर एक ऐसा कम्प्यूटर है, जिससे किसी बात का अंकन छूट नहीं सकता। वह प्रत्येक भाव का अंकन कर लेता है।

हमारी भावनायें कर्म-संस्कारों की जनक

हमने कई बार आपसे कहा कि संस्कार कर्मों से नहीं बनता। उन कर्मों के पीछे जो भावनाएँ होती हैं, - संस्कार उनसे अंकित हुआ करता है। कर्म तो ऊपर से सब समान दीखते हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिए एक ऑपरेशन टेबल है, जिसके पास ऑपरेशन के लिए चाकू रखा है। अचानक वहाँ डाकू घुस आता है। उस छुरी को उठाकर किसी का हाथ काट देता है, पैसा लूट लेटा है और भाग जाता है। वहीं पर कोई रोगी आता है, जिसके हाथ में गैंगरीन है, जिसके उपचार के लिए सर्जन उसका हाथ काट देता है। ये

दोनों धर्म (हाथ काटने के) एक समान ही दिखाई देते हैं, पर इन कर्मों के फल भिन्न-भिन्न होंगे। इन कर्मों के पीछे भी भावना में अन्तर है। कभी-कभी मेरा तो लक्ष्य दूसरा था, मेरा तो उद्देश्य भिन्न था, ऐसा कहकर हम दूसरों को तो छल सकते हैं, पर अपने आपको कभी नहीं छल सकते। इस ईश्वररूपी विराट् कम्प्यूटर को आज तक कोई छल नहीं सका है। एक भावना की तरंग मन में उठी, कर्म हुआ और उसका संस्कार अंकित हो गया। इसलिए कहा - कर्मानुबन्धीनि। सब कर्म से अनुबन्धित हैं।

इसीलिए भगवान ने कहा, 'अर्जुन! ऐसा मत सोचना कि व्यक्ति को इस संसार-वृक्ष से निकलने का कोई नियम नहीं होता। यह संसार-वृक्ष नियम से ही बँधा है। कर्मों के नियम से बँधा है। मनुष्य जैसे कर्म करता है, वैसा उन कर्मों का फल पाता है। मनुष्य की स्मरणशक्ति स्वल्प है। अपने किए कर्मों को वह भूल जाता है। फिर वह कैसे यह दावा कर सकता है कि ईश्वर ने उसके साथ न्याय नहीं किया? वह तो न्याय ही करता है। उसके न्याय को हम नहीं देख पाते। ईश्वर न तो किसी को छलता है और न किसी का पक्षपात करता है। कर्म का जो यह अनुबन्ध है, यह इस मनुष्यलोक में ही है। मनुष्य जिस वृक्ष की रचना करता है, वह अपने आप नहीं होता, कर्म के अनुबन्ध से होता है। **(क्रमशः)**

पार्वती ने महादेव से पूछा था, ''भगवन् , सच्चिदानन्द की प्राप्ति का मूल उपाय क्या है? महादेव ने कहा, ''विश्वास''। मत या पन्थ से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, जिसे जिस मत की शिक्षा-दीक्षा मिली है, उसे विश्वास के साथ उसी मतानुसार साधना करनी चाहिए।

एक बार किसी व्यक्ति ने श्रीरामकृष्ण से कहा, ''मेरी उम्र इस समय पचपन वर्ष है। मैं चौदह साल से ईश्वर की खोज में लगा हूँ। मैं गुरु के उपदेशों का पालन किया, सभी तीर्थ क्षेत्र हो आया, साधु सन्तो के दर्शन किए, पर कुछ तो लाभ नहीं हुआ।'' सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले, ''मैं तुमसे कहता हूँ, जो ईश्वर के लिए व्याकुल होता है, वह अवश्य उनके दर्शन पाता है। मेरी बात पर विश्वास रखो, धीरज धरो।''

— श्रीरामकृष्ण देव

कविता

परशुराम जय-जय

आनन्द कुमार तिवारी 'पौराणिक',
महासमुँद, छत्तीसगढ़

आवेशावतार प्रभु, जीवन पावन ज्योतिर्मय।
जमदग्नि, रेणुका-पुत्र, परशुराम जय जय।।
एक हाथ में शास्त्र, दूजे में बिराजे शस्त्र।
तन बल, ज्ञान शौर्य प्रचण्ड, अद्‌भुत तेज अजस्त्र।।
अन्याय, अहं प्रतिकार किया, ब्रह्म शक्ति जगाया।
विप्रवाहिनी गठित किया, युद्ध विजयश्री पाया।।
परशु धरे, कहलाए परशुराम, पावन लीला मंगलमय।
जमदग्नि, रेणुका-पुत्र, परशुराम जय जय।।

पितु आज्ञानुवर्त्ती पुत्र, माता का भी वध किया।
पुनर्जीवन माँ का वर माँगा, क्रोध पिता का शमन किया।।
कार्तवीर्य-अर्जुन जब, जमदग्नि आश्रम अतिथि बना।
बलपूर्वक कामधेनु माँगा, ऋषिवर ने किया मना।।
सैन्य आक्रमण किया, ऋषि सिर काटा उसने निर्दय।।
जमदग्नि, रेणुका-पुत्र, परशुराम जय जय।।

कार्तवीर्य, अर्जुन वध करके, पुत्र धर्म निभाया।
रक्तरंजित नगरी महिष्मती हुई, अद्‌भुत शौर्य दिखाया।।
रणक्षेत्रों में इक्कीस बार, क्षत्रियों को हराया।
शत्रुरक्त से पितृ तर्पण, कुरुक्षेत्र-कुण्ड में किया निर्भय।
जमदग्नि, रेणुका-पुत्र परशुराम जय जय।।

ऋषियों का अनुपम, विनय मान, फिर हिंसा-कर्म त्याग दिया।
धर्मपूर्वक शासन करके, निर्भय क्षत्रिय-वंश किया।।
दिव्य धनुष प्रभु राम को दिया, शस्त्र ज्ञान कर्ण ने पाया।
गिरि-महेन्द्र पर किया कठिन तप, जीवन शेष बिताया।
युग-युग अमर कीर्ति प्रभु, चिरन्तन शाश्वत, अक्षय।
जमदग्नि, रेणुका-पुत्र, परशुराम जय जय।।

सत्यमेव जयते

आनन्द कुमार, चेन्नई

'सत्यमेव जयते' यह मन्त्र हमारे महान भारतवर्ष का आदर्श वाक्य है। यह मन्त्र मुण्डक उपनिषद से लिया गया है। उपनिषद में हमें जीवन-दर्शन की बातें मिलती हैं। सर्वप्रथम मैं आप सभी को स्पष्ट करना चाहूँगा कि 'सत्यमेव जयते' यह मन्त्र बुद्धि की उपज कदापि नहीं है। हमारे देश के ऋषियों ने इस मन्त्र-ज्ञान का साक्षात्कार किया था। सत्य न्याय, धर्म और परमात्मा का भी द्योतक है। जब तक हम प्रज्ञा के माध्यम से इसे समझने का प्रयास नहीं करेंगे, तब तक भले ही हम इस विषय पर कई घण्टों तक केवल बुद्धि-विलास करते रहें, हमारे जीवन में इस मन्त्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। हम जीवन में तभी सफल होंगे, जब हम भाव-राज्य में प्रवेश कर इसे समझने का प्रयास करेंगे।

'सत्यमेव जयते' का अर्थ होता है 'सत्य ही केवल विजयी होता है। हम थोड़ा जयते शब्द पर ध्यान दें। जयते अर्थात् जीत, विजय। परन्तु जीत तभी होगी, जब हम संघर्ष करेंगे। परन्तु संघर्ष किससे? संघर्ष के दो रूप हैं – पहला है स्थूल रूप, दूसरा है सूक्ष्म। अब हम जरा संघर्ष के स्थूल रूप पर विचार करें। उदाहरण के लिये कौरवों और पाण्डवों में महाभारत का युद्ध हो रहा था। स्थूल रूप से देखें, तो कौरवों की सेना बड़ी विशाल अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित है, परन्तु पाण्डवों की सेना अपेक्षाकृत दुर्बल प्रतीत होती है। महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हो गया। किन्त इस युद्ध का सूक्ष्म रूप महान सत्य यह है कि पाण्डवों को अटल विश्वास था कि वे सत्य-मार्ग पर चल रहे हैं। जब ईश्वर ही हमारे सारथी हैं, तो भय किस बात की? परिणाम हम सभी जानते हैं, पाण्डवों की जीत हुई, जो सत्य के प्रतिनिधि थे और कौरवों की हार हुई, जो असत्य के अनुगामी थे।

उपरोक्त चर्चा का सार यह है कि हमें प्रस्तुत मन्त्र पर रंच मात्र भी सन्देह नहीं रखना चाहिए। सत्य के मार्ग पर चलते हुए भले ही क्षणभंगुर शरीर का अन्त हो जाये, परन्तु अजर, अनन्त आत्मा का प्रकाश सदैव बना रहता है। आइये ! हम सब प्रभु ईसामसीह का उदाहरण लें। हम सब जानते हैं कि ईसामसीह के शरीर का अन्त अत्यन्त कष्टप्रद था। परन्तु वे अन्त तक दोषियों को क्षमा करने की प्रार्थना करते रहे। इसीलिए वे आज सम्पूर्ण विश्व में शान्ति, क्षमा, दया के प्रतीक के रूप में पूजे जाते हैं।

मैं आप सबका ध्यान युगनायक, युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द के ऊर्जापूर्ण गर्जन युक्त वाक्यों की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा। स्वामीजी सदा कहते थे – 'सारा संसार भी यदि हाथों में तलवार लिए तुम्हारे पीछे पड़ जाये, तो भी तुम सत्य का साथ न छोड़ना।' 'मनुष्यता के कल्याण के लिए किया गया कोई भी कार्य व्यर्थ नहीं जाता।' 'नि:स्वार्थता ही अधिक फलदायी होती है, लोगों में इसका पालन करने का पर्याप्त धैर्य नहीं होता।'

महात्मा गाँधी जी अपने सत्य के प्रयोग रूपी शस्त्र के माध्यम से पूरे विश्व के समक्ष पुन: सत्य के प्रति आस्था को अक्षुण्ण रखने में सफल रहे। गाँधीजी ने कहा था – जहाँ सत्य है, वही शक्ति है, वही अहिंसा है। मेरी अहिंसा, कायर पुरुषों का सुरक्षा-कवच नहीं, अपितु यह तो वीर-पुरुषों का सौन्दर्य-मुकुट है। वे आगे कहते हैं – विश्व के सभी धर्म भले ही अन्य चीजों में भेद रखते हों, लेकिन सभी इस बात पर एकमत हैं कि जगत में अन्य कुछ नहीं, केवल सत्य ही जीवित रहता है। इसीलिये गाँधीजी समस्त संसार में सत्य के प्रति आस्थावान लोगों के लिये प्रेरणा-स्रोत बने हुए हैं।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के आविर्भाव के पूर्व भारत का एक बड़ा भाग हिन्दू-धर्म की आस्था के प्रति डगमगाने लगा था। श्रीरामकृष्ण देव ने अपने जीवन से यह प्रमाणित कर दिखाया कि मूर्तिपूजा के माध्यम से भी ईश्वर की प्राप्ति होती है। यदि नहीं होती है, तो दोष पूज्य का नहीं वरन् पुजारी का है। वे कहा करते कि मैंने माँ-काली के चरणों में धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य सब समर्पित कर दिया, परन्तु सत्य नहीं दे पाया।

हम सबको सत्य की शक्ति का प्रमाण मिल गया है। अब आधुनिक प्रमाण देते हैं। क्या हम म्यानमार की लोकतन्त्र समर्थक नेता 'आंग-सून-सूकी' के अटल-अडिग-अदम्य प्रयासों को भूल पायेंगे? क्या हम महान नेल्सन मंडेला के बलिदान को भूल पायेगें? ये सभी सत्य के प्रति समर्पित थे।

पूर्व ब्रिटिश प्रधानमन्त्री 'विंस्टन चर्चिल' ने कहा था – 'सत्य सर्वदा अकाट्य है। द्वेष इस पर हमला कर सकता है, अज्ञानता इसका उपहास उड़ा सकती है, लेकिन अन्त में सत्य ही रहता है।' पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जान एफ कैनेडी ने कहा था, ''सत्य का महान शत्रु अधिकतर जानबूझकर, काल्पनिक या बेईमानी से बोला गया झूठ नहीं, बल्कि दृढ़, प्रेरक और अवास्तविक मिथक होता है।'' प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ व अर्थशास्त्री चाणक्य ने कहा था, ''पृथ्वी सत्य की शक्ति द्वारा समर्थित है। यह सत्य की शक्ति ही है, जो सूरज को चमक और हवा को वेग देती है। वास्तव में सभी चीजें सत्य पर निर्भर करती हैं।''

हमें 'सत्यमेव-जयते' के महान मन्त्र पर सफल प्रयोग करने से रोकनेवाली कुछ बाधाओं की ओर भी मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। वे बाधायें हैं –

१. हममें से अधिकांश का यह मानना कि 'भोगवाद' जीवन का उद्देश्य है। २. मन-मुख का एक न होना अर्थात् कथनी और करनी में अन्तर। ३. संशय होना। कहा भी गया है – 'संशयात्मा विनश्यति' – संशयी का विनाश होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं 'सत्यमेव जयते' यह मन्त्र कितना प्रभावकारी, लाभकारी है। मैं अनेक ज्ञात-अज्ञात, सन्तों, महापुरुषों के चरणों में अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ और यह प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर हम-सबका मार्ग-दर्शन करें! ○○○

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक – शिकागो और विवेकानन्द
सम्पादक एवं संकलन – स्वामी प्रपत्त्यानन्द
प्रकाशक – स्वामी राघवेन्द्रानन्द,
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, नागपुर (महाराष्ट्र)
पृष्ठ २४६, मूल्य – १२०/-

स्वामी विवेकानन्द – यह नाम सुनते-पढ़ते ही विज्ञ विश्व के स्मृति-पटल पर एक ऐसे विभास्वर व्यक्तित्व एवं करुणा कोमल कृतित्व का रूप-स्वरूप साकार हो जाता है, जिसने अपने व्यावहारिक ब्रह्मज्ञान एवं विज्ञान से जगमग-जाग्रत लोकमंगल का अभिनव द्वार अनावृत कर दिया और जिसके समुदार विचार-व्यवहार एवं वैदुष्यपूर्ण व्याख्यान ने संकीर्ण साम्प्रदायिक मानसिकता तथा विद्वेष-विषधरों को प्रभावित ही नहीं, पराजित एवं परास्त भी कर दिया। उन्हीं वैचारिक नवयुग प्रवर्तक स्वामी विवेकानन्द के समग्र जीवन-वृत्त के सन्दर्भ में अनेक मनीषी महानुभावों के ३० आनुभूतिक आलेखों का संपादन और संकलन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी के द्वारा समीक्ष्य ग्रन्थ में हुआ है।

युगावतार श्रीरामकृष्ण परमहंस के अभीष्ट आशीर्वाद एवं कृपा-प्रसाद से कुमार नरेन्द्र ने विवेकानन्द के रूप-स्वरूप में सम्पूर्ण विश्व को सर्वधर्म समभाव एवं मंगलमयी मानवता का जो अमृत सन्देश-उपदेश प्रदान किया, वह उनको प्रेम एवं अहिंसा के अभिनव युगावतार रूप में प्रतिष्ठापित करता है। ११ सितम्बर, १८९३ से शिकागों में प्रारम्भ 'विश्व धर्म सम्मेलन' में स्वामी विवेकानन्द ने अपनी विशद विद्वत्ता एवं वेद-वेदान्त के सारभूत आदर्शों का समाहार प्रस्तुत करते प्रथम सम्बोधन में ही विश्व को विस्मय-विमुग्ध ही नहीं, आत्मवशीभूत भी कर दिया। उनके प्रत्येक शब्द-प्रत्येक वाक्य एवं भाव-भंगिमा में श्रोताओं को एक अपूर्व मानक एवं आध्यात्मिक-विकास-उल्लास का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

कलियुग में ऋषि परम्परा के मूर्धन्य महापुरुष एवं आत्मबोध से परमात्मबोध में पारंगत रामकृष्ण परमहंस के शिव संकल्पमात्र स्वामी विवेकानन्द के उदार, उज्ज्वल विवेकपूर्ण विचारों, आचारों, सत्संस्कारों एवं विश्वमानवता के साथ एकात्मपरक पुण्य-पावन आदर्श चरित पर केन्द्रित विभिन्न मनीषियों, विद्वानों के ललित कलाकलित आलेखों से सम्पन्न यह सद्ग्रन्थ स्वामी विवेकानन्द का यशोवाहक है। यह भारतवर्ष के उदात्त, उन्नत आर्ष गौरव का समन्वयन एवं अखिल विश्व का सर्वधर्मसमभाव तथा मानवता के मंगलमय उल्लास-विकास का प्रवर्धक उल्लेखनीय ही नहीं सादर सदैव पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय महाग्रन्थ है। इस महत् सत्कार्य के संग्रहण एवं समर्थ सम्पादन-प्रकाशन हेतु साधक स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी सदैव आदरणीय एवं अविस्मरणीय भी रहेंगे। एतदर्थ शतशत साधुवाद एवं बधाई।

समीक्षक – आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

साधुओं के पावन प्रसंग (८७)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

विभिन्न साधुओं का सत्संग तथा प्रसंग, काशीधाम, १९२५

''बूढ़ोबाबा या दीनू महाराज (स्वामी सच्चिदानन्द) स्वामी सारदानन्द जी महाराज के शिष्य थे। उन्होंने वाराणसी में अपनी कठोर तपस्या के विषय में बताया था। वे लोग भोजन में केवल भात और आँवला ग्रहण करते थे। स्वामी सारदानन्द जी, स्वामी अभेदानन्द जी तथा बूढ़ोबाबा असी घाट पर निवास करते थे तथा उनलोगों ने पंचकोशी परिक्रमा भी की थी।

''बूढ़ोबाबा अस्वस्थ हो गये तथा उनको अस्पताल में भर्ती कराया गया। सेवा करनेवाले चिकित्सक अपने घर से भात तथा झोल पकाकर बूढ़ोबाबा के लिए ले आते थे। यदि कोई पैसा देता, तो वे पैसा को जल में फेंक देते थे। व्यक्ति उनके प्रचण्ड वैराग्य को देखकर विस्मित हो जाते थे। एक सज्जन ने सम्पूर्ण भारतवर्ष के भ्रमण करने हेतु उनको रेलगाड़ी का टिकट देना चाहा, पर उन्होंने उसको अस्वीकार कर दिया।

''स्वामी शिवानन्द महाराज ने कहा था, 'साठ वर्ष के बूढ़ोबाबा को स्वामी विवेकानन्द जी ने संस्कृत-व्याकरण पढ़ने के लिए कहा। स्वामीजी कहा करते थे, ''श्रीरामकृष्ण का भाव सात-आठ सौ वर्षों तक कार्य करता रहेगा।'' अवतार क्या सदैव आते रहते हैं? उनका प्रकाश धीरे-धीरे जलता है। पुआल जैसे आग की तरह जल कर तुरन्त नहीं बुझता। अवतार का कार्य मजबूत भित्ति के ऊपर प्रतिष्ठित होता है।'

''महापुरुष महाराज ने कहा, 'वाराणसी से रेलगाड़ी चलने ही वाली थी। स्वामीजी ने बूढ़ोबाबा का हाथ पकड़कर कहा, ''तुमको मेरे कार्य में सहायता करनी होगी।'' इसीलिए बूढ़ोबाबा परिव्राजक संन्यास-जीवन त्याग कर मठ में रहने लगे और वहाँ उन्होंने निष्ठापूर्वक सेवा की। स्वामीजी ने उनसे कहा था कि मेरे सामानों का संरक्षण तथा देखभाल करना। स्वामीजी ने कहा, ''भविष्य में प्रदर्शनी होगी, जहाँ पर इस शरीर के एक केश का मूल्य लाखों रुपया होगा।'' इसीलिए बूढ़ोबाबा ने स्वामीजी के कमरे में उनके सामान का संरक्षण किया। स्वामीजी कहा करते थे, ''केवल श्रीरामकृष्ण देव ही इस मठ में वास करने के लिए एकमात्र उपयुक्त व्यक्ति हैं।'' यह त्यागियों का वास-स्थान है। ठाकुर और श्रीमाँ ने कठोर तपस्या से हमलोगों को जो दिया, उसका हमलोग अतिशय दुरुपयोग कर रहे हैं। स्वामीजी की इच्छा थी कि गंगा के किनारे तट-बंध का निर्माण हो, जहाँ पर बैठकर संन्यासीगण ध्यान कर सकें। स्वामीजी के मन्दिर का निर्माण करने के लिए बूढ़ोबाबा को बहुत ही कठोर परिश्रम करना पड़ा था।'

''बूढ़ोबाबा ने कहा, 'हमलोग उस समय अद्‌भुत आध्यात्मिक भाव में थे! हमलोगों का भोजन-वस्त्र की ओर ध्यान ही नहीं था। परिव्राजक संन्यासी के रूप में खाली पैर से चार-धाम तीर्थयात्रा किया हूँ। शरीर पर केवल एक चद्दर था। एक बार डकैतों को अपना कौपीन भी देकर जान बचायी थी। मेरे सिर के बाल जटा जैसे हो गये। स्वामीजी ने समझा कि इसका दिमाग फिर गया है! अन्ततः उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया तथा अपने स्नेहपाश में आबद्ध कर लिया। स्वामीजी का हमलोगों के प्रति क्या ही प्रेम था! मुझे तथा गुप्त (स्वामी सदानन्द) को एक दूसरे केन्द्र में भेजने के समय उनकी आँखों में आँसू थे।

''स्वामी आत्मानन्द, 'यदि कोई बिना जाने ही मन्त्र-दीक्षा ले लेता है, तो उससे क्या होता है? क्या मन्त्र में अन्तर्निहित शक्ति है या जो मन्त्र देते हैं (गुरु), उनकी शक्ति से ही सब होता है?

''स्वामी सारदानन्द ने कहा, 'दोनों है। हमने तो श्रीरामकृष्ण देव को दोनों मानते हुए देखा है। यदि तुम मार्ग में हजारों लोगों को मन्त्र दो, तो क्या उसका कोई फल नहीं होगा? अनेक लोग ऐसा विश्वास करते कि मन्त्र में अव्यक्त

शक्ति है, चाहे वे अनजाने में ही मन्त्र-दीक्षा प्राप्त कर लें। शास्त्रों में तो अन्धा, बीमार, विकलांग व्यक्ति को भी संन्यास लेने में अधिकार का वर्णन है।

वाराणसी आश्रम

''प्रश्न – ''जो लोग यहाँ आयेंगे (श्रीरामकृष्ण के पास आने का आशय) उनका अन्तिम जन्म होगा। इसका क्या अर्थ है?''

''स्वामी सारदानन्द – जो लोग ठाकुर को अपने इष्ट के रूप में स्वीकार करेंगे, उनके जन्म-मृत्यु के प्रवाह में एक सीमा-रेखा लग जायेगी। यदि वे लोग इस जन्म में मुक्त न भी हो सके, तो एक या दो जन्म में मुक्त हो जायेंगे। कम से कम जन्म-मृत्यु के चक्र का अन्त हो जायेगा।

' ''जो लोग यहाँ आयेंगे'' उसका दूसरा अर्थ भी है कि जो लोग रामकृष्ण-परिवार में आ गये हैं या श्रीरामकृष्ण को अवतार के रूप में स्वीकार करेंगे। अधिकांश लोगों का यही मत है। ठाकुर के उदार भाव को स्वीकार करना होगा। जो लोग बद्ध हैं, वे लोग भी गुरु-कृपा से ठाकुर के आदर्श को स्वीकार करेंगे।

''स्वामी अरूपानन्द – ' ''अन्तिम जन्म'' का अर्थ है कि वे लोग इस धरती पर बारम्बार जन्म-ग्रहण नहीं करेंगे। वे लोग, हो सकता है कि कुछ समय ब्रह्मलोक में निवास करें तथा तदनन्तर वहीं से मुक्ति प्राप्त करें। वेदान्त के अनुसार इसे क्रममुक्ति कहते हैं।

''स्वामी सारदानन्द – 'मैंने इस दृष्टिकोण के विषय में नहीं सुना है।'

''स्वामी निखिलानन्द – गोपाल-माँ ने महेश में गोपाल को विश्वरूप में देखा था। क्या वह गोपाल कृष्ण का रूप था या श्रीरामकृष्ण का रूप, जो उनके सामने गोपाल-रूप में प्रकट हुआ था?

''स्वामी सारदानन्द – 'यह मैं नहीं जानता। लेकिन जीवन के अन्तिम दिनों में गोपाल-माँ को ठाकुर के दर्शन ही अधिक हुआ करते थे। इसलिए सम्भव है कि उन्होंने ठाकुर को ही गोपाल के रूप में देखा होगा।'

''स्वामी निखिलानन्द – क्या उन्होंने जप करके सिद्धि प्राप्त की थी?'

''स्वामी सारदानन्द – 'हाँ, जप के माध्यम से ही! जप के साथ-साथ ध्यान भी चल रहा था। वे उसमें पूर्ण रूप से तल्लीन रहती थीं। रामलला के भाव में ठाकुर अनवरत दो-तीन महीने तक भाव-समाधि में थे। इस प्रकार का उदाहरण अब सुनने में नहीं आता। गोपाल-माँ गंगा के किनारे एक छोटी-सी झोपड़ी में कई वर्षों (तीस वर्षों) तक प्रतिदिन बहुत समय तक (सोलह घण्टे) जप किया करती थीं। थोड़ी दूरी पर एक छोटा कृष्ण-मन्दिर था। यदि कोई महिला-भक्त आतीं, तो वे लोग उनकी झोपड़ी में रहा करतीं। उनके आस-पास और कोई नहीं रहता था। परवर्ती काल में, हालाँकि वे एक साधारण महिला के रूप में व्यवहार करती थीं तथा उनको बहुत अधिक दर्शन-वर्शन नहीं होता था।

''श्रीरामकृष्ण ने जिन शिष्यों को संन्यास-दीक्षा दी, उनके नाम हैं – १. स्वामी विवेकानन्द २. स्वामी ब्रह्मानन्द ३. स्वामी प्रेमानन्द ४. स्वामी योगानन्द ५. स्वामी निरंजनानन्द ६. स्वामी अद्भुतानन्द ७. स्वामी रामकृष्णानन्द ८. स्वामी अभेदानन्द ९. स्वामी अद्वैतानन्द १०. स्वामी शिवानन्द ११. स्वामी सारदानन्द। (ठाकुर ने स्वामी तुरीयानन्द और स्वामी अखण्डानन्द को अन्य किसी दिन गेरुआ वस्त्र दिया था। स्वामी सुबोधानन्द और स्वामी त्रिगुणातीतानन्द महाराज उस दिन काशीपुर उद्यानवाटी में नहीं थे। स्वामी विज्ञानानन्द महाराज ने बेलूड़ मठ में ठाकुर के चित्र के सामने संन्यास लिया था) ठाकुर ने अपने संन्यासी शिष्यों को गेरुआ वस्त्र तथा रुद्राक्ष की माला दी थी। लाटू महाराज (स्वामी अद्भुतानन्द) ने जो गेरुआ वस्त्र तथा रुद्राक्ष की माला ठाकुर श्रीरामकृष्ण से प्राप्त की थी, वह वाराणसी अद्वैत आश्रम में संरक्षित है। **(क्रमशः)**

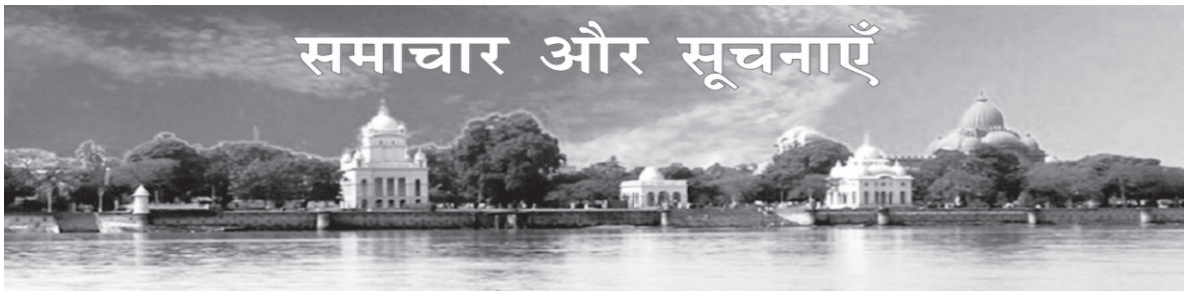

विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में श्रीमाँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती मनाई गयी

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में ११ दिसम्बर, २०२५ को श्रीमाँ सारदा देवी की तिथि-पूजा महोत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें प्रात:काल मंगल आरती, मन्दिर में विशेष पूजा, भजन, हवन, भोगारती हुई। स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने श्रीमाँ के जीवन चरित पर प्रकाश डाला। मन्दिर में सन्ध्या आरती के बाद श्रीसारदानामसंकीर्तन हुआ। इसमें कुल १८०० लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया।

१० जनवरी, २०२६ को भी रायपुर आश्रम में स्वामी विवेकानन्द तिथि-पूजा महोत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें प्रात:काल मंगल आरती, विशेष पूजा, भजन, हवन, भोग-आरती स्वामी पद्माक्षानन्द जी महाराज के द्वारा सम्पन्न की गयी। आश्रम के सचिव स्वामी योगस्थानन्द जी महाराज ने स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन-चरित पर प्रकाश डाला। उस दिन लगभग १५०० भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया।

राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में १२ जनवरी २०२६ को राष्ट्रीय युवा दिवस का आयोजन सत्संग भवन में किया गया। इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर के जैव प्रौद्योगिकी विभाग विज्ञान अध्ययनशाला के विभागाध्यक्ष श्री एस. के जाधव जी थे। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला और स्वामीजी के शिक्षा, स्वास्थ्य, नारी-शिक्षा आदि विभिन्न पक्षों से बच्चों को अवगत कराया। स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने युवकों का आह्वान किया कि वे जीवन में महान बन कर स्वामी विवेकानन्द जी के सपनों को साकार करें। कार्यक्रम की अध्यक्षता आश्रम के सचिव स्वामी योगस्थानन्द जी महाराज ने की। स्वामी पद्माक्षानन्द जी ने बच्चों को स्वदेश मन्त्र का पाठ कराया और धन्यवाद ज्ञापन किया। स्वामी देवभावानन्द जी ने मंच संचालन किया। स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने प्रसाद वितरण की व्यवस्था की। अन्त में सबको अल्पाहार, विवेक ज्योति पत्रिका और स्वामीजी की पुस्तकें – शिकागो वक्तृता और वर्तमान भारत दी गयीं। इस कार्यक्रम में चयनित डिप्टी कलेक्टर स्वप्रिल वर्मा, लक्की शर्मा सहित, गणमान्य नागरिक और विभिन्न विद्यालय-महाविद्यालय के लगभग ३५० छात्रों ने भाग लिया।

रामकृष्ण विवेकानन्द स्वाध्याय सेवा ट्रस्ट, धनबाद द्वारा राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया, जिसमें बी.सी.सी.एल के अध्यक्ष सह-प्रबन्ध निदेशक श्री मनोज कुमार अग्रवाल, बेलूड़ मठ के स्वामी सिद्धिप्रदानन्द जी, संजय कुमार सिंह, राजेश कुमार, कम्पनी सेक्रेटरी श्री बी.के.परुई और आश्रम के सचिव बिकेश कुमार सिंह उपस्थित थे। साथ ही विभिन्न प्रतियोगिताएँ हुईं, जिसमें १५० छात्र-छात्रों ने भाग लिया।

२३ जनवरी, २०२६ को विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में सरस्वती पूजा का आयोजन हुआ, जिसमें माँ सरस्वती की मूर्ति की पूजा ब्राह्मणों ने वेद-मन्त्रों से की। छात्रों ने वैदिक शान्तिमन्त्र का पाठ और भजन किया। आश्रम के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। इस अवसर पर स्वामी देवतानन्द और स्वामी धर्मपालानन्द जी सहित लगभग ७५० लोग उपस्थित रहे।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची में राष्ट्रीय युवा दिवस का आयोजन किया गया, जिसमें झारखण्ड के महामहिम राज्यपाल श्री संतोष कुमार गंगवार जी, सरला विरला विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. जगन्नाथ चेखालिंगम् जी, डॉ. निशान्त गोयल, स्वामी अन्तरानन्द जी और आश्रम के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी ने युवाओं को सम्बोधित किया। इस अवसर पर राज्यपाल महोदय ने झारखण्ड के उत्कृष्ट प्रतियोगियों को सम्मानित एवं पुरस्कृत किया।